श्री चन्द्रप्रभ

शांति पाने का सरल रास्ता

सच्ची शांति, सौन्दर्य और आनन्द प्रदान करने वाली चर्चित पुस्तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

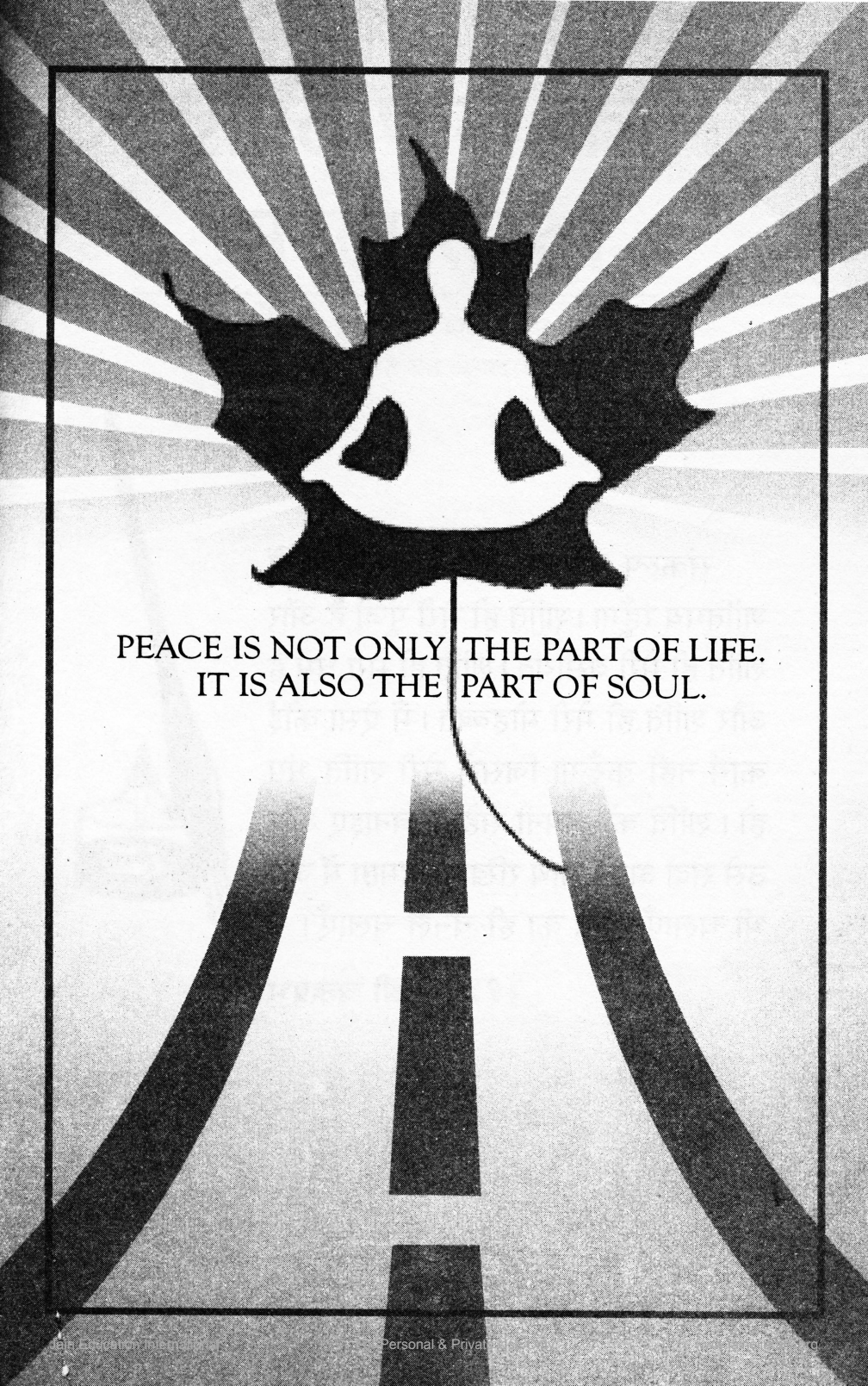

Personal & Priva

संकल्प कीजिए कि मैं हर हाल में शांतिमय रहूँगा। शांति ही मेरी पूंजी है और शांति ही मेरी वसीयत। शांति ही मेरा धर्म है और शांति ही मेरी मोहब्बत। मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करूँगा जिससे मेरी शांति भंग हो। शांति को अपनी सहेली बनाइए और उसे सदा अपने साथ रखिए। दिमाग़ में जब भी चलाएँ शांति का ही चैनल चलाएँ।

—श्री चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांति पाने का सरल रास्ता

शांति चाहिए तो शांत रहिए।
मन में सदा शांति का चैनल चलाइए।

श्री चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांति पाने का सरल रास्ता

श्री चन्द्रप्रभ

प्रकाशन वर्ष : जनवरी, 2012

प्रकाशक : श्री जितयशा श्री फाउंडेशन

बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम. आई. रोड, जयपुर (राज.)

आशीर्वाद : पूज्य गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी

मुद्रक : हिन्दुस्तान प्रेस, जोधपुर

मूल्य : 25/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

आधुनिक जीवन की जटिलताओं के चलते ध्यान तनाव-मुक्ति के लिए एक सशक्त साधन के रूप में उभरा है, जो न सिर्फ व्यक्ति को उसकी पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है, बल्कि उसे सार्वभौम अस्तित्व से जोड़कर आत्म-विकास में भी सहायता देता है।

'भीतर एकाग्रचित्त होते ही एक विस्फोट होता है आनन्द का।' वो आनन्द का झरना जो अपने ही भीतर है, प्रस्फुटित होने लग जाता है। बाहर की दुनिया की बड़ी-से-बड़ी ख़ुशी हमारे भीतर उस आनन्द का विस्फोट नहीं कर सकती, जो विस्फोट ध्यान में गहरे उतरने से होता है। आनन्द का यह विस्फोट हमारे राग और द्वेष को, अज्ञान के अंधकार को नष्ट करके हमारी छोटी सोच और छोटे दिल को बड़ा कर देता है।

वर्तमान में अनेक धर्मगुरु इस पवित्र कार्य में तत्पर हैं। सर्वश्रद्धेय पूज्य श्री चन्द्रप्रभ जी वर्तमान की वह विभूति हैं जो सरल, सहज और शांतिपूर्ण ढंग से ध्यान की बहुत-सी प्राचीन एवं नई विधियों द्वारा हजारों-लाखों व्यक्तियों को ध्यान और शांति के रस की अनुभूतियों से विभोर कर रहे हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि पूज्यश्री जैसे प्रतिभाशाली एवं जीवन्त सद्गुरु अपनी आध्यात्मिक ज्योति द्वारा जोधपुर में संबोधि-धाम जैसी पवित्र साधना-स्थली को प्रकाशित कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में पूज्य गुरुदेव ने अपने हृदय की ऊर्जा देकर मानो भगवान महावीर एवं गौतम बुद्ध के शब्दों को पुनर्जीवित किया है। उनका यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रयास रहता है कि इस आध्यात्मिक ऊर्जा का आभामंडल लोगों के हृदय का अज्ञान दूर करके उन्हें अपने आलोक में प्रतिस्थापित कर सके।

सभी ऋषि, संत और संबुद्ध स्त्री-पुरुष एक ही सनातन स्रोत से जुड़े हुए हैं। शरीर, मन, बुद्धि, भाषा इन सभी से भिन्न होने के बावजूद उनके भीतर ख़ुशबू तो उस एक सत्य की ही होती है। पूज्यश्री का कहना है- 'मैं तो केवल शून्य हूँ- बाँस की खाली पोंगरी जैसा। गीत तो प्रभु ही गा रहा है।' प्रवचन के समय ऐसा लगता है मानो 'वो अनामी' ही शब्दों को ओढ़कर प्रकट हो गया है।

अपनी सहज प्रकट होने वाली धारावत प्रवचन शैली में श्री चन्द्रप्रभ जी सभी विषयों को एक सहजता, सुगमता, सरलता, ओजस्विता और रसपूर्ण वाणी में तथाकथित धर्मों की दीवारों के पार, रूढ़िवादी प्रवृत्तियों का खंडन करके अपने आत्मिक और आनन्दपूर्ण विचारों से जनमानस को प्रेमामृत का पान कराते हैं। हम इस प्रेमामृत को पीएँ, जी भरकर जीएँ और फिर उड़ेलें इस रस को दूसरों के हृदय में। इस प्रेम की सुगंध को अपने मन-बुद्धि से परे प्राणों में भर लें और महकाएँ अपने सम्पूर्ण जीवन को।

मन भ्रमित हो सकता है, बुद्धि भ्रमित हो सकती है, अतः अपने हृदय की गहराई को बढ़ाएँ और साधना के उच्चतम पथ की ओर बढ़ते जाएँ। 'भीतर यदि प्रेम, ज्ञान और हृदय हो तो ही तुम मानव हो।' पूज्यश्री के इस संदेश को ध्यान में रखकर ही हम प्रस्तुत पुस्तक में प्रवेश करें।

—गीता अरोड़ा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	निर्णय कीजिए– शांति चाहिए या सफलता	...	९-१७
२.	मन में चलाइए शांति का चैनल	...	१८-२८
३.	मुस्कान दीजिए, मुस्कान लीजिए	...	२९-४०
४.	सहजता को बनाइए समाधि का साधन	...	४१-५६
५.	सचेतनता में छिपी है शांति की साधना	...	५७-६५
६.	ध्यान से जानिए स्वयं को	...	६६-७९
७.	अनुसरण कीजिए आनंददायी धर्म का	...	८०-९६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्णय कीजिए—
शांति चाहिए या सफलता ?

प्रत्येक व्यक्ति, फिर चाहे वह अतीत का भगवान रहा हो या वर्तमान का इनसान, उसने अपने लिए सुख का एक सपना देखा है, स्वर्ग का एक ख़्वाब देखा है। कोई व्यक्ति चाहे अमीरी में हो या ग़रीबी में लेकिन इसके बावज़ूद प्रत्येक व्यक्ति की यह चाहत रहती है कि वह अपने जीवन में स्वर्ग का आनन्द अवश्य उपलब्ध करे।

महावीर और बुद्ध जैसे लोगों ने अपने जीवन में स्वर्ग को पाने के लिए शांति का रास्ता अख़्तियार किया था। अम्बानी या अमिताभ ने, टाटा या बाटा ने अपनी ओर से स्वर्ग को पाने के लिए सफलता के रास्ते का चयन किया। एक ओर एक व्यक्ति अपने जीवन का आनन्द लेने के लिए शांति के रास्ते का चयन करता है और दूसरा व्यक्ति अपने लिए सफलता के रास्ते का चयन करता है। शांति के रास्ते पर ऐसा क्या है कि सफलता की बजाय शांति के रास्ते पर चला जाए? महावीर और बुद्ध जैसे लोगों ने समृद्धि की ऊँचाइयों को छूने के बावज़ूद अपने क़दम शांति के रास्ते पर बढ़ा दिये। सम्राट् अशोक ने युद्धों का त्याग कर दिया। व्यक्ति अपना लक्ष्य तलाशे कि उसे पैसा चाहिए या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रेम; शांति चाहिए या समृद्धि?

मेरी बातें जो मैं निवेदन कर रहा हूँ – वे महज बातें नहीं हैं, वे जीवन की उस सच्चाई से मुलाक़ात कराने वाली बातें हैं जो आपके जीवन में तय करवा देना चाहती हैं कि आप अपने लिए शांति का रास्ता चाहते हैं या सफलता का रास्ता चाहते हैं। ज़िंदगी में एक बात का हमेशा ख़्याल रखें कि ज़िन्दगी में दोनों रास्तों को एक साथ नहीं जिया जा सकता है। जैसे दो नावों पर एक साथ सवारी नहीं की जा सकती और दो सड़कों पर एक साथ नहीं चला जा सकता, वैसे ही या तो शांति का रास्ता मिलेगा और या फिर सफलता का रास्ता मिलेगा। शांति और सफलता इन दोनों रास्तों को एक साथ वही व्यक्ति जी सकता है जिसने अपने लिए दोनों तरह के संसार में काम करने का गुर सीख लिया हो।

इसे आप यों समझिए। एक पुरानी कहानी बताती है कि एक सम्राट् रुग्ण हो गया। बीमार होने के बाद जब सारे राजवैद्यों ने अपनी ओर से ज़वाब दे दिया तब दूर-दराज़ से आए एक फक़ीर को भी राजा को दिखाया गया। फ़क़ीर ने राजा को ध्यान से देखा, भीतर से भी और बाहर से भी; फिर जोर से खिलखिला कर हँस पड़ा और कहने लगा, 'अरे राजा, तू भी क्या बेवकूफ बनाता है? अरे! तुझे तो कोई रोग ही नहीं है, तू तो केवल ढोंग रच रहा है।' यह सुनकर राजा को भी आश्चर्य हुआ और अगल-बगल खड़े लोगों को भी। फ़क़ीर ने कहा, 'मैं दावे के साथ कहता हूँ कि तुम्हारे शरीर में कोई भी रोग नहीं है।' राजा ने कहा, 'फ़क़ीर, तुम बिल्कुल सच कहते हो, हक़ीकत में मुझे शरीर का कोई रोग नहीं है, अगर मुझे कोई रोग है तो वह मानसिक रोग ही है और मुझे रोग यह है कि मुझे मेरी मानसिक शांति उपलब्ध नहीं है। मैं हर समय चिन्ताग्रस्त, तनावग्रस्त, अवसाद और कुंठा से घिरा हुआ हूँ। यही मेरा सबसे बड़ा रोग है। क्या तुम मुझे मेरे रोग से मुक्त कर सकते हो?'

फ़क़ीर ने मुस्कराते हुए कहा, 'राजन्, यदि तुम्हें ठीक होना है तो अपने सैनिकों, सिपाहियों, सभासदों और मंत्रियों से कह दो कि वे पूरी दुनिया में चले जाएँ और ऐसे किसी व्यक्ति को ले आएँ जो कि सफल भी हो और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांत भी हो; जो कि अपने जीवन में मन की शांति का स्वामी भी हो और अपनी ओर से पैसे वाला अमीर समृद्ध भी हो। यदि ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए और वह तुम्हें छू दे तो राजन्, तुम उसी समय स्वस्थ हो जाओगे।'

कहते हैं उस सम्राट् इब्राहिम के सैनिक और सिपाही पूरी दुनिया में छा गए, मगर जब थक-हार कर लौट कर आए, तो वे अपने साथ एक भी आदमी को नहीं ला पाए, क्योंकि उन्हें ऐसा कोई भी समृद्ध और सफल व्यक्ति न मिल पाया कि जिस व्यक्ति ने अपनी ओर से दावा किया हो कि वह वास्तविक तौर पर अपनी मानसिक शांति का स्वामी है।

सैनिकों को खाली हाथ लौटा हुआ देखकर फकीर ने कहा, 'राजन्, मुझे तो पहले ही पता था कि ऐसा इनसान धरती पर नहीं मिलेगा, जिसकी एक हथेली में शांति हो और दूसरी हथेली में अमीरी और समृद्धि हो। दोनों में से एक ही चीज मिल सकती है। राजन्, अब तुम अपने आप में फैसला करो कि तुम्हें अपनी ज़िंदगी के लिए क्या चाहिए? शांति का रास्ता चाहिए या सफलता का रास्ता? शांति का रास्ता तुम्हें ईश्वर की तरफ ले जाएगा और सफलता का रास्ता तुम्हें पैसा और अमीरायत की तरफ ले जाएगा।'

सोचो, सोच-सोचकर सोचो कि तुम्हें कौन-सा रास्ता चाहिए। यह कहानी हमें यह सोचने पर मज़बूर करती है कि हमें जीवन में क्या चाहिए? आप स्वयं अपने आप में यह सोचें, अपने आप में यह निर्णय करें कि आपको अपनी ज़िंदगी में कौन-सा रास्ता चाहिए। यदि आप ईश्वर के रास्ते पर चलना चाहते हैं तो पैसे के प्रति रहने वाले मोह का त्याग करना पड़ेगा। अगर समृद्धि की तरफ चलना चाहते हैं तो ईश्वरीय भाव को अपने जीवन की नगरिया से बाहर निकाल देना होगा क्योंकि दोनों चीजें एक साथ नहीं रह सकती हैं।

मैं अगर सौ तरह के छातीकूटे अपने माथे पर झेलूँगा तो मेरी शांति गिरवी चली जाएगी। दो चीजों को एक साथ कतई नहीं रखा जा सकता है। क्या आपने कभी दो बीवियों से शादी करने वाले व्यक्ति की हालत देखी है? एक पत्नी से शादी करोगे तो सुखी रहोगे और दो औरतों से शादी कर बैठे तो टाँग खिंचाई करवाते-करवाते ज़िन्दगी ख़त्म हो जाएगी। एक पत्नी तुम्हारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाँई टाँग खींचेगी और दूसरी पत्नी तुम्हारी बाँई टाँग। यह टाँग खिंचाई बड़ी महंगी चीज है। तुम जीवनभर अशांत-अशांत-अशांत बने रहोगे। जब तक कोई भी व्यक्ति अपने जीवन के लिए यह फैसला नहीं कर लेगा कि मुझे शांति चाहिए या सफलता, तब तक वह कभी शांति पाने के लिए साधना-शिविर में आ जाएगा और सफलता पाने के लिए फिर से व्यापार में चला जाएगा। व्यापार में फिर निष्फल हो जाने पर फिर साधना-शिविर में आ जाएगा शांति पाने के लिए। नतीज़ा यह निकलेगा कि हर आदमी दो नौकाओं पर एक साथ सवारी करना चाहेगा।

आप फैसला कर लें कि आपको पत्नी चाहिए या परमेश्वर? पत्नी चाहिए तो परमेश्वर की माला जपने की कोई जरूरत मैं नहीं समझता और अगर परमेश्वर चाहिए तो पत्नी को नम्बर दो बनाना पड़ेगा। दोनों का मज़ा अगर लेना चाहते हो, तो बन्दा न इधर का रहेगा न उधर का, धोबी का गधा न घर का रहेगा न घाट का। लोगों की हालत बहुत पतली होती जा रही है। लोग अपने जीवन में अपने नज़रिए को साफ नहीं रख रहे हैं कि आखिर वे अपने जीवन में कौन-सा परिणाम चाहते हैं? जब तक कोई भी व्यक्ति अपने जीवन के लिए यह फैसला न कर लेगा तब तक थोड़ा-थोड़ा धर्म भी होता रहेगा, थोड़ा-थोड़ा पाप भी चलता रहेगा। रोज़ थोड़े-थोड़े कीचड़ में नहाते रहेंगे, रोज़ थोड़े-थोड़े बाहर भी आते रहेंगे। हालत तो वही होने वाली है जो कि किसी हाथी के द्वारा रोज़-रोज़ तालाब में गंगा-स्नान किया जाता है, और जैसे ही तालाब से निकल कर हाथी बाहर आता है वापस कीचड़ को अपनी ही पीठ पर लोटाया करता है। रोज़ हाथी स्नान करता है और रोज़ वही कीचड़ अपनी पीठ पर डालता रहता है। ज़िंदगी भर स्नान होता रहता है और ज़िंदगी भर आदमी कीचड़ में जाता रहता है। परिणाम-स्वरूप अस्सी वर्ष के किसी बूढ़े व्यक्ति से पूछा जाए कि आपको अपने जीवन में क्या मिला? हो सकता है कि कोई तीस वर्ष का व्यक्ति इस बात का ज़वाब न दे पाए कि उसके हाथ में, उसकी हथेली में ज़िन्दगी का क्या परिणाम है। इसलिए आप अपने दादा से पूछें कि, 'दादाजी आपकी हथेली में आपके जीवन का क्या परिणाम है?' क्या ऐसा कोई परिणाम है, ऐसा कोई अनुभव है, क्या ऐसी कोई समृद्धि या शांति है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या, क्या ऐसा कोई सुकून है जो कि आप विरासत के रूप में अपने बच्चों को दे कर जा सकेंगे? ज़मीन दे दोगे दो-चार बीघा, प्लॉट दे दोगे, दो-चार मकान दे दोगे। एक-एक दूकान पर दो-दो ताले लगा कर दोनों भाइयों में बाँट दोगे। पर, इसके अलावा व्यक्ति ने अपने जीवन में शांति कितनी पाई, अध्यात्म में कितनी उन्नति हुई और वह परमेश्वर के रास्ते पर कितना चला? यह प्रश्न फिर भी बना रह जाएगा।

शायद ये मुँहपत्ती बाँधने वाले, तिलक लगाने वाले व्यक्ति केवल इतना कह सकते हैं कि जीव न मरे इसलिए कपड़ा बाँध लिया और माथे पर ठंडक आ जाए इसलिए तिलक लगा कर किसी मूर्ति की पूजा कर ली। मूर्ति की पूजा करना अलग बात है और परमेश्वर की पूजा करना अलग बात है। मूर्ति की पूजा करने के लिए आपका पुण्यात्मा होना ज़रूरी नहीं है लेकिन परमेश्वर की पूजा करने के लिए आपका निष्पाप होना पहली अनिवार्यता है। मूर्ति के मन्दिर में व्यक्ति को जाने से नहीं रोका जा सकता है, पर परमेश्वर के मन्दिर में अगर आपके हाथ उजले नहीं हैं तो वहाँ से निकाल दिए जाओगे। इसलिए हर व्यक्ति अपनी-अपनी ज़िंदगी के लिए फैसला करता हुआ चले कि वो आखिर जिस दिन इस शरीर को छोड़ कर जाएगा परमेश्वर के दरबार में, तो क्या उसके पास वो चेहरा वो मुख-मुद्रा है कि वो परमेश्वर को जाकर अपना चेहरा दिखा सके?

फैसला किया जाना चाहिए कि शांति चाहिए या सफलता चाहिए। आज पहले फैसला करना और उसके बाद दुकान जाना। पहले फैसला करना और उसके बाद मंदिर जाना। और जब तक फैसला न हो तब तक दोनों जगह को छोड़ कर, शाम को यहाँ अकेले में आना और बैठ कर चिन्तन करना। चिन्ता-विन्ता बहुत कर ली, अब चिन्ता नहीं चिन्तन कर के देखो तो पता चलेगा कि आप अपनी ज़िंदगी के लिए कौनसा रास्ता चाहते हैं। मैं भी चाहूँ तो आज पूरे विश्व में फैल सकता हूँ, ईश्वर ने हमें वो काबिलियत दी है कि पूरे विश्व में छा सकते हैं। पर जिस आदमी ने अपने जीवन के लिए फैसला कर लिया हो कि मुझे ईश्वर के मार्ग पर चलना है और ईश्वर के मार्ग पर चलने के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए शांति के अलावा और कोई मार्ग नहीं हो सकता, वह व्यक्ति हर हाल में अपनी शांति को बरकरार रखेगा। मंदिर में जलने वाला दीपक चाहे जले या बुझे, समाज में चलने वाले लोग चाहे खुश हों या नाखुश पर मेरी शांति हर हाल में अखण्ड बनी हुई रहनी चाहिए। शांति मिलती है तो आपसे रिश्ता भी स्वीकार है और अगर अशांति मिलती है तो आपसे रिश्ता भी अस्वीकार है।

भगवान एक तो वो कि जिसका निर्माण इनसान करता है, एक वो जो कि हम सब का निर्माण करता है। उस ईश्वर की आराधना बहुत हो गई जिसका निर्माण हमने किया है। अब एक बार उसकी आराधना कर के देखो जिसने हम सब लोगों का निर्माण क़िया है। उसकी डगर पर आओ, वो डगर कहीं और नहीं है। वो डगर आपके शांति के रास्ते से निकलती है। वो डगर आपके अपने भीतर ही है। शांति कहीं और नहीं मिला करती, शांति जब भी मिलेगी तो आपके अपने फैसले से, आपके अपने अन्दर ही मिलेगी और यही कारण है कि जब हम ध्यानयोग से गुजर रहे हैं, तो अभी एकमात्र सबसे पहला प्रयोग यही चलता चला जा रहा है कि व्यक्ति सबसे पहले अपने तन-मन की उत्तेजनाओं का शमन करे, उन्हें शांतिमय बनाए। जैसे ही व्यक्ति अपने भीतर शांति का अनुभव और शांति का रसास्वाद करता है वैसे ही व्यक्ति की, अपने अंतर्मन से एकाकार की स्थिति बन जाती है। और स्वयं से एकाकार होते ही, जिसे व्यक्ति बाहर ढूंढ़ रहा होता है उसका आनन्द अपने आप में आने लग जाता है।

ऐसा हुआ कि जब ईश्वर ने इस दुनिया का निर्माण किया था, तब कोई भी ईश्वर को याद करता तो उसे हाजिर होना पड़ता था। बेटा याद करे और पिता हाजिर न हो यह कैसे संभव हो सकता है। मीरा याद करे, मीरा के घुँघरू बजे और गिरधर की बंशी न गूँजे यह कैसे संभव है। चन्दनबाला के आँसू बहे और महावीर न आएँ यह कैसे मुमकिन है। द्रोपदी अगर पुकारे अपने चीर को बढ़ाने के लिए और चीर न बढ़े यह कैसे मुमकिन है। और तब, जब ईश्वर को सब लोग अपने-अपने मतलब से याद करते चले जा रहे थे, ईश्वर परेशान हो गए। आदमी को अगर ठोकर भी लग जाती तो ईश्वर को याद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता, आदमी को अगर घाटा लग जाता, तो घाटा दूर करने के लिए प्रभु को बुलाता। यदि किसी के सन्तान पैदा न होती तो भी ईश्वर का आह्वान करता, इस तरह मनुष्य ने ईश्वर को परेशान कर दिया।

भगवान ने बैकुण्ठ छोड़ा और सोचा कि कहीं ओर चला जाता हूँ, सो भगवान आए और गुफाओं में बैठ गए। मगर, लोगों ने संन्यास धारण करना शुरू कर दिया, लोग गुफाओं में जाने लग गए। भगवान को लगा कि लोग उन्हें यहाँ भी नहीं छोड़ रहे। सो वे पर्वतों के बीच चले गए, वहाँ भी लोग पहुँचने लग गए। पहले तो लोग पैदल ही यात्रा पर जाते थे, किन्तु आरामतलब होने के कारण मनुष्य फिर कारों और बसों द्वारा वहाँ पहुँचने लग गए और जब से ये रोज-ब-रोज बिना ज़रूरत की कारें पहुँचने लगीं, तभी से वहाँ से भगवान जी लुप्त हो गए। ईश्वर को लगा कि लोग परेशान करने लग गए हैं, ये लोग आते हैं और एक नारियल चढ़ा कर महादेव जी और महावीर जी को राजी करना चाहते हैं। यह उचित नहीं है। ये प्रभु-दर्शन के काबिल नहीं हैं। सो ईश्वर वहाँ से भी लुप्त हो गए और नदियों में चले गए। ईश्वर ने सोचा नदियों के जल में छिप जाता हूँ, मगर लोगों ने वहाँ भी जा कर अपने अस्थिकलश विसर्जित करने शुरू कर दिए कि जाते हैं और अपने पाप वहाँ धो आते हैं। भगवान को लगा कि ये मनुष्य मुझे कहीं भी चैन नहीं लेने देता है। बार-बार मेरी समाधि में खलल डालता है। याद करना, बुलाना और पहुँचना शुरू कर देता है।

ईश्वर चिंतित हुए। जब भी कोई चिन्तामग्न हो तो चिंता से मुक्त होने के लिए वह चिन्तन करे; मन को अगर दिशा देनी हो तो मनन करें। ईश्वर ने भी दो पल के लिए अपनी आँखें बंद कीं और चिन्तन किया, मनन किया और तब उन्हें प्रतीत हुआ कि उन्हें कहाँ रहना चाहिए। और तब ईश्वर, सीधे वहाँ चले आए; क्या आपको पता है तब ईश्वर ने अपने रहने के लिए कौन-सी जगह ढूंढ़ी? आप लोगों का चयन किया, अपने लोगों का चयन किया और ये जो स्वयं ईश्वर की बनाई हुई रचनाएँ हैं उन रचनाओं में आकर रचनाकार समाहित हो गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब वही व्यक्ति ईश्वर को उपलब्ध कर सकता है जो शांति के रास्ते पर अपने क़दम बढ़ाता है। ईश्वर से मुलाक़ात करने के लिए जो अपने क़दम बढ़ाता है उसी को ईश्वर अपने काबिल समझता है। काबिल लोगों का ही वह साहिल बन कर, उनके पास आकर वो अपने आपको प्रकट करता है। अपना आनन्द देता है, अपनी शांति की रोशनी और ज्ञान का आभामण्डल प्रदान करता है। अपने प्रेम की प्याली पिलाता है, अपनी करुणा की छत्रछाया उन पर बनाता है, अपने आनन्द की बारिश, फुहारें उन पर वो बरसात करता है।

ईश्वर मिलेंगे उन्हीं को, जिन्होंने अपनी काबिलियत बनाई और काबिलियत उन्हीं लोगों के रास्ते पर बन पाएगी जो लोग अपनी शांति का प्रबन्ध करेंगे। मेरी शांति का प्रबंधक मैं हूँ और आपकी शांति के प्रबन्धक आप हैं। मेरा मैनेजर मैं, और आपके मैनेजर आप। और फैक्टरियों में सौ-सौ कर्मचारी रखे जा सकते हैं पर यह तो भीतर का मामला है। इस अन्दर के मामले में केवल अन्दर वाला ही अपनी पहचान बना सकता है। 'जिन खोजां तिन पाइयां गहरे पानी पैठ' कि 'तेरा सांई तुज्झ में ज्यों पूहुपन में बास; कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरी-फिरी ढूँढ़े घास।'

लोग उसे बाहर ढूँढ़ते रहते हैं। वो कहीं नहीं है और वो सब जगह है। अगर ढूँढ़ना है तो पहले अपने आप में ढूँढ़ें, अपने आप में न मिल पाए तो कहीं और ढूँढ़ने के लिए जाना; वो सब जगह व्याप्त है। अपने आप में पाओगे, तो हर मूरत में आपको प्रभु की सूरत दिखाई देगी। और जब तक अपने आप में न देखोगे, अपनी शांति में उसका रसास्वादन न करोगे तब तक उसे कहीं नहीं पा सकोगे। मंदिर में चौबीस घंटे नहीं बैठा जा सकता, आधे घंटे के लिए ही जाया जा सकता है। सामायिक में चौबीस घंटों के लिए तो बैठा जा सकता है लेकिन ज़िंदगी भर तो उसमें भी नहीं बैठा जा सकता है। लोग महाराज बन जाते हैं, कहते हैं संन्यास ले लिया अब तो उनके चौबीसों घंटों की 'सामायिक' हो गई। आप किसी महाराज को भी चौबीस घंटे किसी एक आसन पर बैठा दो। उन्हें भी चींटियाँ काटने लग जाएँगी। वो भी खिसक जाएँगे।

संत लोग जीवन भर की 'सामायिक' तो ले लेते हैं मगर 'सामायिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में बैठ नहीं सकते। मेरे भाई, चौबीसों घंटे मंदिर में तो नहीं रहा जा सकता है, पर चौबीसों घंटे अपने आप में तो ज़रूर रहा जा सकता है, अपने आप से जुड़ कर रहा जा सकता है। बोलो, बतियाओ बाहर से, मगर पल-पल अपना आनन्द लो, अपने में सदा आनन्दित रहो।

फैसला कर लीजिए कि आपको अपने जीवन के लिए क्या चाहिए? अगर चाहिए शांति, शांति, शांति तो सच्चाई यह है कि शांति ही अपने आप में सुख है। शांति ही जीवन की सबसे प्यारी सहेली है, शांति ही जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग है। शांति में ही आरोग्य और आनंद की आत्मा समायी है। शांति में ही सद्भावों का संगीत है और शांति ही परमात्मा की प्रार्थना है। स्वयं को शांतिमय बनाकर व्यक्ति पाप, ताप और अभिशाप— तीनों को नष्ट कर सकता है। गंगा सिर्फ पाप का नाश करती है, चन्द्रमा सिर्फ ताप का नाश करता है, पर मन की शांति तो पाप, ताप और अभिशाप— तीनों को समाप्त कर देती है।

वास्तविकता तो यह है कि शांति को पाना ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। यह ईश्वर का मार्ग है और ईश्वर के मार्ग पर जीने के लिए व्यक्ति का शांत, सौम्य व पल-पल आनन्दित होना पहली अनिवार्यता है। अपनी ओर से प्रेमपूर्वक इतना ही अनुरोध है।

अमृत प्रेम! नमस्कार!

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन में चलाइए शांति का चैनल

यह मानते हुए मैं सबको शांति की प्रेरणा देता हूँ कि जो व्यक्ति स्वयं शांतिमय होगा, वही अपनी ओर से अपने परिवार को, अपने समाज को, अपने देश और अखिल मानवता को शांति प्रदान कर सकेगा। एक अशांत व्यक्ति मानवता को अपनी ओर से जब भी कुछ देगा तो अशांति ही प्रदान करेगा। तनावग्रस्त व्यक्ति के द्वारा औरों के प्रति तनाव के ही बीज बोये जा सकते हैं। चिंताग्रस्त व्यक्ति के द्वारा चिन्ता के कैक्टस ही उगाए जा सकते हैं।

अगर कोई व्यक्ति अपने आप को शांतिमय बना रहा है तो ऐसा करके वह अपने परिजनों की, अपने परिवार और समाज की अद्‌भुत सेवा कर रहा है। एक माँ अगर स्वयं को शांतिमय बना रही है तो ऐसा करके वह अपनी संतानों को शांति का संस्कार, शांति का दूध पिला रही है। एक पिता स्वयं के अन्तरमन को शांतिमय बना रहा है तो ऐसा करके वह अपनी ओर से अपने माता-पिता, अपनी पत्नी और अपने बच्चे और बहुओं को भी शांति का सुकून देने में सफल हो रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या कोई क्रोधी व्यक्ति सदाबहार किसी को प्रेम कर सकेगा? क्या चिंताग्रस्त व्यक्ति अपनी ओर से घर के वातावरण को प्रसन्नता प्रदान कर सकेगा? क्या कोई ईर्ष्याग्रस्त प्राणी अपनी ओर से दूसरों को प्रेम और प्यार का सुकून दे पाएगा?

मोहब्बत की दहलीज़ पर क़दम रखने के लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति स्वयं को शांतिमय बनाए। जो शांतिमय होता है वह तो किसी गुलाब के फूल की तरह खिला हुआ रहता है। जैसे कोई व्यक्ति गुलाब के फूल पर हवा का तेज झौंका मार जाए या फिर गुलाब के फूल को आहट भी क्यों न पहुँचा जाए, लेकिन फिर भी गुलाब के फूल की खासियत होती है कि गुलाब अगर कली बनकर रहेगा तब भी महकेगा, फूल बनकर जीएगा तब भी महकेगा, कोई उसे पानी पिलाए तब भी महकेगा, कोई उसे तोड़ ले तब भी महकेगा, कोई उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी अलग कर दे तब भी महकेगा और अगर कोई सुखाकर गुलाब के फूल को किसी किरयाने के व्यापारी को बेच आएगा तब भी वह उसकी दुकान पर रहकर भी महकेगा।

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में शांति के गुलाब खिलाए हैं वही अपने जीवन में प्रसन्नता और आनन्द की महक पा सकेगा। अगर कोई व्यक्ति अपने आप में क्रोधी है तो वो यह न समझे कि वह क्रोधी है। क्रोधी क्रोध करके रात-दिन अपने परिवार को अभिशाप ही दिया करता है। एक क्रोधी या तनावग्रस्त व्यक्ति भला अपनी ओर से समाज को क्या दे पाएगा?

किसी भी व्यक्ति के द्वारा मानवता की सेवा के लिए धन का दान देना पुण्य की बात है लेकिन मानवता को अपनी ओर से शांति प्रदान करना लाखों-लाख रुपयों के दान से भी ज्यादा श्रेष्ठ है। ज़रा कल्पना कीजिए कि किसी व्यक्ति ने अपनी ओर से अपने दादाजी की याद में पानी की प्याऊ बनवाई या उसने लोगों के लिए पानी का प्रबन्ध किया, ठण्डे शीतल पेय की व्यवस्था भी की, पर मैं पूछना चाहूँगा कि एक ओर पानी की प्याऊ बनाना और दूसरी ओर अपने ही क्रोध पर काबू न रख पाना, क्या परस्पर विरोधाभासी नहीं है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानवता की सेवा के सौ-सौ उपक्रम हो सकते हैं। आप बताइए, आप एक माँ हैं न्, आपने अपने बच्चे को दस दफा प्यार से सहलाया, गाल सहलाया, माथे पर हाथ फेरा मगर शाम के वक्त दो चाँटे उठाकर जड़ दिए। अब आप बताइए कि बेटे के मन में चाँटे याद रहेंगे या आपके द्वारा दस बार सहलाये गए गाल, हाथ या वो प्यार याद रहेंगे? कौन-सी चीज याद रहेगी? चाँटा याद रहेगा।

अरे भई! जब आपको इस बात का होश है, बोध है कि चाँटा ही याद रहेगा तो सावधान! किसी को याद रखने के लिए आप चाँटा नहीं, प्यार और शांति याद रखवाइये। चाँटा वही व्यक्ति मारा करता है जो शांतचित्त नहीं होता है। अगर आप अपनी ओर से अपने बच्चों को चाँटा नहीं मारते, उसे समता, शांति और प्रसन्नता के फूल समर्पित करते हैं तो सचमुच आप चाहे शरीर छोड़कर देवलोक भी क्यों न चले जाएँ मगर आपके बच्चे अपनी माँ को याद करके आँसू ढुलकाते रहेंगे। वे कहेंगे, 'मेरी माँ तो देवी थी, देवी का अवतार थी।'

एक चिड़चिड़े स्वभाव का आदमी अगर शाम के वक्त अपने घर पहुँचे और पत्नी पर चिड़चिड़ाना शुरू कर दे तो पत्नी के मन में यही आएगा कि मेरा पति चार घंटे और लेट आए तो अच्छा है। वहीं अगर आप एक मुस्कान, अन्तर्मन में गुलाब के फूल की महक और खिलावट ले कर घर पर पहुँचते हैं तो सचमुच आपकी पत्नी तो क्या आपके नन्हे-मुन्ने बच्चे भी आपकी प्रतीक्षा करते मिलेंगे कि पापा आएँ, तो उनके साथ खाना खाऊँ, उनका प्रेम और आशीर्वाद प्राप्त करूँ।

शांत रहने वाला व्यक्ति समाज की अद्भुत सेवा करता है। माना जीवन में दुःख हैं, पीड़ाएँ हैं, संत्रास हैं, संताप हैं, हर किसी के जीवन में छोटी-मोटी बाधाएँ होती ही हैं। किसी का पति ठण्डा है तो पत्नी तेज है, किसी की पत्नी ठण्डी है तो पति तेज है। हर किसी को अपने साथ विपरीत विरोधाभासों को साथ लेकर चलना पड़ता है। अगर आप अपने जीवन में शांतिमय जीवन जीने का निर्णय कर लें, संकल्प कर लें, तो आपकी पत्नी चाहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेज हो चाहे ठण्डी, कोई भी पानी तभी तक उबलता है जब तक तुम अपने आप में आग बनते हो। तुम अगर अपने आप में सरोवर बन जाओ तो अंगारे को उसमें गिरकर बुझना ही होगा। यदि हमारे कारण हमारे घर में कलुषित और दूषित वातावरण बनता है तो मानकर चलना कि दो में से एक आदमी सरोवर न बन पाया। तुम शीतल बन जाओ तो सूरज को भी ठण्डा होना पड़ता है।

शांति और आनन्द पाने के लिए न तो हर किसी व्यक्ति को हिमालय की गुफा में जाना पड़ता है और न ही चाइना की दीवार देखने या सिंगापुर घूमने की जरूरत पड़ती है। अगर होंगकोंग, बैंकोक घूमने से ही आनन्द मिलता हो तो भाई हर आदमी तो रोज-रोज होंगकोंग या बैंकाक नहीं जा सकता है। लेकिन आनन्द तो हर रोज लिया जा सकता है।

आनन्द लेने के लिए ज़रूरी नहीं है कि तुम अपनी पत्नी को हर समय गले ही लगाए रखो। आनन्द पाने के लिए तो ढेर सारे साधन हैं। नीले आकाश को देखो, तुम्हें आनन्द मिलना शुरू हो जाएगा। सुबह की सुनहरी धूप को देखो तुम्हें आनन्द मिलेगा। अपने ही घर में जो छोटा-सा पोता या पोती है, उस शिशु के चेहरे की किलकारी को देखो तो तुम्हें उससे भी आनन्द और सुकून मिलना शुरू हो जाएगा।

आनन्द तो तुम्हारा फैसला है, लेना चाहो तो दीवारों को देख करके आनन्द ले सकते हो, लेना चाहो तो अपने आप से आनन्द ले सकते हो, किसी अपाहिज़ को अपने पास से गुजरते वक्त देखा तो बोध हो आया, भगवान! तेरी लाख-लाख शुक्रगुजारी। अरे! तूने उसे तो वंचित रख दिया मुझे तो तूने सारे अंग दिये हैं। तुम अपाहिज़ को देखकर भी अपने लिए प्रभु के प्रति शुक्रगुजारी अदा करने का आनंद ले सकते हो।

आनन्द लेना है तो अपनी इस मरणधर्मा काया का भी आनन्द ले सकते हो। अरे, और तो और, अपनी आती-जाती साँसों का अनुभव करते हुए उनका भी आनन्द ले सकते हो। आनन्द तो आदमी की मानसिकता है। सुख-दुःख ये दोनों मानसिकताएँ हैं। दुःख के वातावरण में भी सुख लिया जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकता है, अभाव में भी स्वभाव बनाया जा सकता है, हानि हो जाए तब भी अगर मानसिकता ठीक रहे तो आप हानि में भी अपनी आनन्द-दशा को, अपनी शांत दशा को बरकरार रख सकते हैं। मैं हर हाल में आनंदित रहूँगा- आपका यह फैसला ही आपके लिए आनन्द-पथ का निर्माण करता रहेगा।

मैं शांति का पक्षधर हूँ। कहते हैं अतीत में जब महाभारत हुआ था, तो गांधारी ने इसके लिए कृष्ण को भी दोषी ठहराया, पर कृष्ण युद्ध के विरोधी थे। उन्होंने अंतिम चरण तक शांति का प्रयास किया। कभी कृष्ण ने कहा था कि 'पाण्डवों को पाँच गाँव भी दे दो तब भी युद्ध टाला जा सकता है।' व्यक्ति के द्वारा अन्तिम क्षण तक यह प्रयास किया जाना चाहिए कि उसकी ओर से शांति हो, शांति रहे, व्यक्ति शांति का स्वामी बना हुआ रहे।

कोई भी व्यक्ति क्रोध का तभी इस्तेमाल करे जब क्रोध के अलावा शांति के समस्त द्वार, समस्त रास्ते बन्द हो चुके हों। अपने मुँह से गाली तभी निकालनी चाहिए तब तुम्हारे पास गाली निकालने के अलावा अन्य कोई विकल्प या रास्ता खुला ही न रहे। गाली दो, मगर गाली को अन्तिम चरण में, पारमाण्विक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करो।

क्रोध आदमी के जीवन का परमाणु-अस्त्र है और परमाणु-अस्त्र का उपयोग, ब्रह्मास्त्र का उपयोग बात-बात में करने से ब्रह्मास्त्र की शक्ति तुम्हारे लिए आत्मघातक बन जायेगी। जीवन में नकारात्मकता का तभी इस्तेमाल किया जाना चाहिए जब आदमी के द्वारा अपनाई जाने वाली सकारात्मकता सम्पूर्णत: निष्फल हो जाए। वरना याद रखिए कि सकारात्मकता से बढ़कर और कोई समाधान, और कोई अमृत, और कोई संजीवनी होती ही नहीं है।

मैंने कहा मैं शांति का पक्षधर हूँ। मेरे लिए शांति ही स्वर्ग है, मेरे लिए शांति ही जीवन की गंगा है। शांति में ही धर्म का वास है। शांति ही प्रभु है, और प्रभु स्वयं शांतिस्वरूप है।

आपने जब-तब माचिस का उपयोग किया है। माचिस में बारूद की पचास तीलियाँ होती हैं। तीली का निचला हिस्सा लकड़ी है और ऊपरी हिस्सा बारूद है। हमारे शरीर का भी निचला हिस्सा देह है और ऊपरी हिस्सा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिर है। हमारा शरीर एक तरह की तीली ही है। तीली थोड़ा-सा घर्षण लगते ही सुलग उठती है और हम भी थोड़ी-सी बात चुभते ही क्रोधित हो जाते हैं? प्रश्न है हम बारूद की तीली हैं या इंसान हैं? तीली के भी माथा है और हमारे भी माथा है। पर फर्क यह है कि हमारे माथे में दिमाग़ है पर तीली के केवल माथा ही है। तीली दिमाग़ के अभाव में खुद पर नियंत्रण नहीं रख सकती। हमारे तो माथे के साथ दिमाग़ भी है। अपने दिमाग़ का इस्तेमाल कीजिए। स्वयं को तीली नहीं, गुलाब की कली बनाइये, जो हर हाल में महके, खिले, मुस्कुराए।

तो शांति की साधना कीजिए। शांति को अपनी सहेली बनाएँ। यदि मुझसे कोई पूछना चाहे कि मेरी सहेली का नाम क्या है? तो मेरा ज़वाब होगा- शांति। भारत में पुरुष अगर किसी सहेली का नाम बता दे तो बहुत संकोच आएगा। पुरुष-मित्र का नाम तो बताया जा सकता है पर सहेली का नाम बताना हो तो पत्नी के बिगड़ने की संभावना रहती है।

मेरी सहेली बहुत सुन्दर है। मैं अपनी सहेली को हर वक्त अपने साथ, अपने पास ही रखता हूँ। वो भी क्या किसी को दोस्त बनाया जो दो पल काम आये और दो पल के लिए दूर हो जाए। मित्र बनाओ तो ऐसा मित्र बनाओ जो हमारे जीवन की छाया बन जाए। मेरे उस दोस्त का नाम, मेरे मित्र, मेरी सहेली का नाम 'शांति' ही है, अन्तर्मन की शांति। आप भी बना लो इसे अपनी सहेली जिसको आप हर समय अपने साथ रख सकें। इस सहेली का नाम शांति है, हर हाल में शांति।

जीवन में वह हर कार्य स्वीकार्य हो जिसे करने से शांति मिलती है। वह हर सम्बन्ध, हर व्यक्ति, हर निमित्त त्याग दिया जाना चाहिए जिसके पास जाने से, जिसके साथ व्यवहार करने से, जिसके साथ सम्बन्ध जोड़ने से हमें अशान्ति मिलती हो।

पापा आदरणीय हैं, पर पापा अगर हमें अशान्ति दे रहे हैं तो पापा से अपने आपको निर्लिप्त करो। पति आदरणीय है, पत्नी आदरणीय है पर अगर वे तुम्हारी शांति को बार-बार खण्डित करते चले जा रहे हैं तो तुम अपने आप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को उनसे वैसे ही निर्लिप्त कर लो जैसे कि कमल की पंखुड़ियाँ अपने आप को कीचड़ से ऊपर उठा लिया करती हैं।

आखिर, कोई और तो हमें हमारी शांति देने नहीं आएगा। हम ही हमारी शांति की व्यवस्था करेंगे। 'संबोधि' का मार्ग अर्थात् शांतिपूर्वक जीने का मार्ग, होश और बोधपूर्वक जीने का मार्ग। यह मार्ग व्यक्ति को उसकी शांति से रूबरू करवाता है। व्यक्ति के अन्तरमन में घर कर चुकी अशांति का विसर्जन करवाता है, व्यक्ति को उसकी शांति प्रदान करता है। एक ऐसी शांति जो सदा आपके साथ रहे। आपकी छाया बनकर रहे। आपके जीवन की रोशनी बनकर आपके साथ रहे।

हो सकता है किसी व्यक्ति ने स्वर्ग और नरक का अनुभव न किया हो। क्या आपने कभी किसी देवता के दर्शन किए हैं? नहीं। क्या आपने कभी स्वर्ग देखा है? या आपने कभी नरक देखा है? नहीं। पर जिस व्यक्ति ने देव और दानव न देखे हों, स्वर्ग और नरक न देखा हो, लेकिन उसने भी अपने भीतर 'शांति' और 'अशांति' को ज़रूर देखा है।

सच्चाई यह है कि शांति स्वयं ही स्वर्ग है, अशांति स्वयं ही नरक है। शांति-पथ का अनुयायी स्वर्ग का साधक है, वहीं अशांति का अनुसरण करने वाला स्वयं ही स्वयं का गुलाम है। यदि कोई व्यक्ति कभी क्रोध नहीं करता, सदा शांत और सौम्य रहता है, सचमुच वह दिव्य है, वह धरती पर रहने वाला देवता है। उस देव को मेरा प्रणाम है।

आप अपने आप पर ग़ौर करें कि क्या आप इस स्थिति में हैं कि आपको कभी किसी बात पर क्रोध, चिंता या तनाव नहीं होता? अगर आप ऐसे हैं तो निश्चय ही आपकी सूरत को देखना किसी भी महान तीर्थ के मंदिर में बैठी मूर्ति के दर्शन से कम नहीं है।

मैंने सुना है: एक थियोलॉजिकल कॉलेज में धर्म-प्रचारकों को तैयार किया जाता था। कहते हैं एक बार कॉलेज के कुलपति ने छात्रों से कहा, 'जब कभी तुम धर्म-शास्त्र का विवेचन करो तथा बीच में स्वर्ग का जिक्र आ जाए तो तुम प्रसन्नता जाहिर करना, अपने चेहरे पर हँसी लाना, आँखों में ताज़गी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाना, पूरी तरह से आनंदित हो जाना जिससे लगे कि स्वर्ग के वर्णन के कारण तुम खुशी का अनुभव कर रहे हो।'

एक लड़के ने पूछा, 'सर, अगर नरक का वर्णन करना पड़े तो हम क्या करें?' कुलपति बोले, 'कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। पृथ्वी अब उस अवस्था में पहुँच गई है जिसमें मनुष्य के जीवन में न तो शांति है, न उसमें आनंद है, न प्रभु की प्रीत है, इसलिए तुम्हारी जैसी सूरत है, वैसी सूरत से ही काम चल जाएगा। कोई विशेष सूरत बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

जीवन में स्वर्ग को ईज़ाद करने के लिए यह घटना एक सहज ही प्यारी प्रेरणा है। इस कहानी से आप अपने लिए प्रेरणा लें और अपने मन और सूरत को प्रेममय, शांतिमय, आनंदपूर्ण बनाएँ।

निश्चय ही जिस चीज को पाने से आदमी को सुख मिले, वो चीज शांति है और उसे पाया जाना चाहिए। जिस चीज को छोड़ने से आदमी को सुख मिले वो चीज अशांति है, दुःख है और उसे छोड़ा जाना चाहिए।

ध्यान में बैठकर हम अपने आप को शांतिमय बनाते हैं। अपनी श्वासों को शांतिमय बनाते हैं। अपनी काया को शांतिमय बनाते हैं। अपने अन्तर्मन को शांतिमय बनाते हैं। भीतर की चंचलता को, भीतर में सागर की लहरों की तरह उठ रही लहरों और मीनिंगलैस विचारधाराओं को शांतिमय बनाते हैं। ध्यान धर रहा हूँ अर्थात् स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ। यह एक अकेला बोध रखिए।

एक बात और, आपने कभी टी. वी. तो देखी है। सबने देखी है। रोज ही देखते होंगे। टी. वी. देखना आदमी की एक आदत है। टी. वी. में आप किसी और को देखते हैं और ध्यान में अपने आप को देखते हैं। टी. वी. में अपने मनपसन्द का चैनल चलाते हो और ध्यान में भी आपको अपने मनपसंद का चैनल चलाना चाहिए। और, जब जो चैनल चलाते हैं, तब उसी चैनल से ही जुड़े हुए सारे दृश्य और वचन आया करते हैं।

जब सोनी का चैनल चलाएँगे तो क्या स्टार चैनल का कोई दृश्य उसमें उभरकर आएगा? नहीं आएगा। जब सोनी का चैनल चलाओगे तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोनी से जुड़े हुए ही सारे दृश्य और कथन उभरकर आयेंगे। जब आप शांति का चैनल अपने भीतर चलाएँगे, तो शांति तत्त्व ही साकार होने लगेगा। आप अपने जीवन में, अन्तर्मन में सदा एक ही चैनल चलाइये और वो है शांति का चैनल।

संकल्प कीजिए कि मैं हर हाल में शांतिमय रहूँगा। शांति ही मेरी पूंजी है, शांति ही मेरी वसीयत है। शांति ही मेरा धर्म और शांति ही मेरी संतान होगी। आपका यह संकल्प ही आपके भीतर शांति के भाव को प्रगाढ़ करेगा।

क्या आपने कभी देखा है कि जब पत्नी पीहर चली जाती है तो आपके मन में किस तरह के विचार उठकर आते हैं? पत्नी से जुड़े हुए ही आया करते है। और जब पत्नी से जुड़े हुए विचार आते हैं तो शायद और-और भी विचार आते होंगे कि अरे! तू तो चली गई पर मेरी रातें हराम कर गई। ...हँस रहे हो। कभी-कभी आदमी को हँसना भी चाहिए- अपनी बेवकूफी पर। क्योंकि यह आदमी के मन की दशा है।

जैसा सोचोगे, फिर वैसा ही दृश्य भीतर आता चला जाएगा। पत्नी का चैनल स्टार्ट करोगे तो पत्नी से जुड़े हुए विचार और दृश्य उभर कर आएँगे। दुकान का चैनल, बच्चों का चैनल शुरू करोगे तो दिमाग़ में वैसे ही विचार उभर कर आएँगे। मन तो बावला है। जो दिशा दोगे, वह उधर की ही परिणति देना शुरू कर देगा। जब आप ध्यान में बैठकर शांति का चैनल, शांति का प्रयोग, शांति का अनुष्ठान करोगे, स्वयं को शांतिमय बनाने की धारणा करोगे, तो सब कुछ सहज शांतिमय, शांतिमय, शांतिमय होता चला जाएगा।

मैं शांति को प्रणाम करता हूँ। यह मानते हुए कि जिसके चित्त की स्थिति शांतिमय है वह सचमुच दुनिया में संत आदमी है। जिस व्यक्ति के चित्त में लगातार क्रोध, चिन्ता, तनाव भरा हुआ रहता है उस व्यक्ति से ज्यादा दयनीय स्थिति भला और किसकी हो सकती है! इसी तरह जिस व्यक्ति के अन्तर्मन में शांति नहीं है, जब देखो तब चिन्ता, तनाव, चिड़चिड़ापन और गुस्सा है तो यह उस आदमी की अन्तर-आत्मा की बहुत दयनीय अवस्था ही हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी व्यक्ति के जीवन में समग्र शांति तभी आती है जब व्यक्ति अपने स्वभाव को शांतिमय बनाता है, अपने स्वभाव को सौम्य और आनन्दमय बनाता है। ऐसी शांतिमयी और आनंदमयी अवस्था पाने के लिए ही हम लोग सचेतन श्वसन-क्रिया करते हैं, अर्थात् पूर्ण सावचेती, पूर्ण जागरूकता और पूर्ण एकाग्रचित्त होकर अपनी श्वसनधारा पर अपने-आप को केन्द्रित करते हैं, श्वसनधारा की अनुपश्यना करते हैं। अनुपश्यना यानी लगातार देखना, अनुभव करना। मैं स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ, शांतिमय बना रहा हूँ, इसी धारणा, इसी भावदशा में अपने आप को लगातार..... लगातार तत्पर करते चले जाते हैं, स्वयं की आंतरिक शांति और अस्तित्व के साथ एकलय, एकाकार होते चले जाते हैं। इस दौरान जब-जब चित्त चंचल होता है, हम 10-12 गहरी साँस लेते हैं, पुनः अपनी हर साँस को 'स्लो एण्ड डीप' धीमी, धीमी और गहरी करते चले जाते हैं। इसी से शांति साकार होने लगती है। ध्यान-धारणा सफल होती है।

मेरी समझ से अगर हम लोग अपनी ओर से शांति को अपना लक्ष्य बनाते हैं, आनन्दमयी दशा को अपना लक्ष्य बनाते हैं, तो निश्चित तौर पर हमारे चित्त के क्लेश, संक्लेश, विकार और तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, वैर-वैमनस्य, एक दूसरे के प्रति पलने वाली ईर्ष्या और जलेसी से हम मुक्त होने लगते हैं।

शांति की इस साधना को आप जितने अधिक सचेतन, सावचेत, कॉनसियस होकर करेंगे, तो भले ही भीतर कितनी ही खटपट क्यों न हो, आप पाएँगे कि धीरे-धीरे सब कुछ शांतिमय होता चला जा रहा है। हम ध्यान की प्रत्येक बैठक को खूब आनन्दमयी मनोदशा के साथ करें।

हो सकता है कोई विधि, कोई बैठक कभी आपको अनुकूल न भी लगे, तब भी सात दिन तक केवल एक ही धारणा, एक ही संकल्प अवश्य बनाए रखें कि मैं स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ और ऐसा करने के लिए ज़रूरी नहीं है कि आप हर समय मेरे पास ही ध्यान में बैठें। आपको जहाँ कहीं भी ध्यान में बैठना अनुकूल लगे, श्वसन-क्रिया पर ध्यान करें और यह मानसिकता प्रगाढ़ करते जाएँ कि मैं अपने आप को शांतिमय बना रहा हूँ। बस, शांति को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्व दीजिए और ध्यान धरिए। शांति को दिया गया महत्त्व ही धीरे-धीरे गहराई तक उतरता जाएगा और आप शांत होते जाएँगे। भीतर में भटकाव अधिक उठे, तो वही 10-12 गहरी साँसों का पुनः पुनः प्रयोग करते रहें।

हालांकि सबके दिमाग में तनाव है, सबके दिमाग में दरारें पड़ी हुई हैं, सबके शरीरों में विकार समाये हुए हैं। इसलिए बाहर से सभी लोग धुले हुए ही क्यों न दिखाई दें, पर भीतर से तो हर आदमी अपनी-अपनी सच्चाई से वाकिफ़ है। सात दिन तक आप अपने अन्तर्मन में शांति का चैनल शुरू कर ही दें। ध्यान धरें तो शांति का ध्यान धरें, प्रार्थना करें तो शांति की प्रार्थना करें, चिंतन करें तो शांति का चिंतन करें। अपनी आँखों में, अपनी आत्मा में, अपनी हर धड़कन में एक ही रोशनी हो, एक ही सुवास हो, एक ही प्रकाश हो, मन में एक ही लक्ष्य और एक ही धारणा हो - शांति। इस सप्ताह को शांति का सप्ताह बनाएँ। अगला सप्ताह स्वतः शांतिमय ही होगा।

हो गई है पीर पर्वत-सी,
पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई
गंगा निकलनी चाहिए।

क्रोध, तनाव, अवसाद बहुत हो चुके हैं। पीड़ाओं के, शिकवा-शिकायतों के पहाड़ खड़े हो चुके हैं। अब तो जीवन से बहे शांति की गंगा, आनंद की गंगा, तृप्ति और मुक्ति की गंगा, 'निर्वाण शांतम्' की गंगा।

एक ही सूत्र याद रखिए : शांति चाहिए तो शांत रहिए। मन में सदा शांति का चैनल चलाइए।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुस्कान दीजिए
मुस्कान लीजिए

मेरे लिए जीवन की साधना का अर्थ इतना-सा ही है जितना कि किसी वीणा के तारों को साधने का हुआ करता है।

जैसे वीणा के तारों को साधने की कला आ जाए तो तार तब केवल तार नहीं रहते; तब वे वीणा के तार भी प्राणी मात्र के हृदय को शांति और सुकून देने वाला संगीत बन जाया करते हैं। वीणा के तारों को साधना आ जाए तो ये तार इनसान के हृदय को अद्‌भुत संगीत, अद्‌भुत सौन्दर्य और आनन्द का प्रकाश दे सकते हैं।

जीवन को जीने के लिए न तो अन्य किसी उपमा की आवश्यकता है और न ही अपनी आँखों में कोई प्रतीक रखने की ज़रूरत है। जीवन में याद रखने जैसा केवल एक ही प्रतीक है और वह है वीणा के तार! वीणा के तारों को अगर ढंग से कसा जाए तो ही तार संगीत पैदा कर सकते हैं और अगर उन्हें अनावश्यक ढीला छोड़ दिया जाए तो वही तार जीवन के संगीत को समाप्त कर देते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीणा के इन्हीं तारों से जीवन की प्रेरणा लेते हुए निवेदन करूँगा कि हम भी अपने जीवन की वीणा के तारों को न तो इतना कसें कि ये तार किसी कौए की कांव-कांव बन जाएँ और न ही इतना ढीला छोड़ें कि ये किसी गधे की ढेंचू-ढेंचू हो जाए।

साधो, वीणा के तारों को साधो। दोस्ती करो, अपने आप से दोस्ती करो। मंगल मैत्री के तार जोड़ो अपने ही अंतर्मन से और इस तरह शांति और आनंद के संगीत का सृजन करो। लुत्फ़ उठाओ।

स्वर्ग अगर कहीं है तो व्यक्ति के अपने ही अन्तर्मन के सुख और शांति में है और नरक भी अगर कहीं है तो वह भी आदमी के अशान्त, उद्विग्न, उत्तेजित अन्तर्मन में छिपा हुआ है। ऐसे किसी स्वर्ग में ज्यादा विश्वास मत रखो जो कि किसी आकाश में माना जाता है। तुम ऐसे स्वर्ग का सृजन करो जिसके फल तुम आज पा सको और जिसकी छाया सड़क चलते राहगीर को भी मिल सके। स्वयं को ऐसा बनाओ जो खुद भी हरा-भरा रहे। पथिकों को भी छाया दे और कोई पंछी भी उधर से गुजरे तो आपकी डालियों पर बैठकर थोड़ी देर गुटर-गूं कर सके, गीत गा सके। आखिर, पंछी ऐसे किसी पेड़ पर नहीं बैठा करते जिसके नीचे आग सुलगती हो, क्रोध-उत्तेजना के साँप रहते हों।

अपने में देखोगे तो पाओगे कि जब-जब मैंने क्रोध किया तब-तब मैं अशान्त हुआ, जब-जब मैं अशान्त हुआ तब-तब मैंने अपने भीतर के सुख को खण्डित होते हुए देखा और जब-जब भीतर का सुख खण्डित हुआ, तब-तब उत्तेजित, आक्रोशित और चिन्तित हुआ। और इन्हीं सब चीजों का परिणाम था नरक।

कल जब मैंने आप लोगों से पूछा कि आपने नरक देखा है? सबका उत्तर नेगेटिव था। पर मैं कहना चाहूँगा कि मैंने नरक देखा है और न केवल नरक देखा है वरन् स्वर्ग भी देखा है और दोनों के बीच रहने वाले भेद को भी समझा है। दोनों के बीच रहने वाले भेद को समझने के बाद ही यह कहता हूँ कि अगर आदमी को जीवन जीने की कला आ जाए, वीणा के तारों को साधने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की कला आ जाए तो आदमी स्वयं ही अपने नरक को स्वर्ग बना लिया करता है। नरक को स्वर्ग बनाना मनुष्य के हाथ में है। अपना भाग्यविधाता मनुष्य स्वयं है।

मुझ सरीखे व्यक्ति को यदि नरक भी भेज दिया जाए, तो मेरे लिए चिंता की बात नहीं है। मुझे पता है स्वर्ग का रास्ता नरक से ही निकलता है। हमें स्वर्ग जाने के लिए पहले नरक को ही बदलना पड़ता है।

धर्म की विभिन्न परम्पराओं में एक परम्परा कहती है कि भगवान कृष्ण मरकर नरक में गए। वे बाद में तीर्थंकर होंगे। हालांकि इस तरह की बात कहना ख़तरनाक है, पर हम इसे पोजिटिव अर्थों में लें। कहने वाले तो गाँधी जी और चन्द्रप्रभ को भी नरक में गया कह देंगे, पर याद रखो नरक में तुम्हारी नहीं, कृष्ण जैसे लोगों की ही ज़रूरत है ताकि वे वहाँ पहुँचकर उसे भी स्वर्ग में बदल सकें। भागवत कथाओं की जरूरत आजाद चौक और गाँधी मैदान में कम, कारागार में ज्यादा है।

अगर कृष्ण जैसे लोग नरक में नहीं जाएँगे तो नरक सदा-सदा के लिए नरक ही बने रहने पर विवश रहेगा। हम भी यदि अपने जीवन को स्वर्ग का पथ नहीं दे पाए, तो सावधान! यों ही क्रोधी, अभिमानी, शराबी, झूठ-फरेबी, स्वार्थी बने हुए हम नरक को जीते रहेंगे।

या तो निश्चय ही लोगों को नरक अच्छा लगता होगा, तभी तो वे नरक में जाने जैसा काम करते हैं। या फिर वे स्वर्ग-नरक को मानते ही नहीं होंगे। सो जो मन में आया जानवर की तरह कहीं कुछ कर बैठते हैं। अगर स्वर्ग में विश्वास है, तो स्वर्ग के पथ पर चलना होगा। जीवन को आज, अभी, यहीं से ही स्वर्गमय बनाने की पहल करनी होगी।

स्वर्ग-नरक प्रतीकात्मक शब्द हैं। अच्छाई को दिया गया सबसे अच्छा शब्द है स्वर्ग। नरक बुराई और बुरे फल का निकृष्टतम प्रतीक है। नरक कह दिया यानी आ गई लास्ट स्टेज। इससे बड़ी किसी की तौहीन नहीं की जा सकती। स्वर्ग कह दिया तो इससे बड़ा सम्मान और कोई दिया नहीं जा सकता। कृष्ण को किसी के द्वारा पहले नरक, फिर स्वर्ग जाने की बात कही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गई; यानी जो बुरा हुआ उसके लिए पहले नरक तो भोगना होगा। जो अच्छा किया, उसके लिए फिर स्वर्ग द्वारा अभिनंदन होगा। आप इस बात को किसी कृष्ण के लिए न समझें। बात तो समझने के लिए कही गई है। बाकी कृष्ण तो अद्‌भुत हैं, अनेरे हैं। वैसा होने के लिए सौ जनम लेने पड़ते हैं। वे तो अवतार हैं, महापुरुष हैं। तीर्थंकर हैं। मुझे कृष्ण प्रभु से जीवन का बहुत माधुर्य मिला है। कृष्ण तो चाहे पृथ्वी पर अवतरित हो या पाताल में, वे जहाँ जाएँगे स्वर्ग की ही रचना करेंगे।

बाकी, किसी के भेजे कोई स्वर्ग नहीं जाता। किसी के भेजे कोई नरक नहीं जाता। तुम्हारे अपने अन्तर्‌मन की छाया के साथ ही स्वर्ग और नरक चला करता है।

शांति स्वर्ग है, अशांति नरक है। शांति का साधन स्वर्ग-पथ का साधक है; अशांति का पथिक नरक-पथ का राहगीर है। इसलिए हर साधक अपने अन्तर्‌मन को शांतिमय बनाने का अनुष्ठान करे। हर हाल में मैं अपने चित्त के क्लेशों को, संक्लेशों को, राग-द्वेष, वैर-वैमनस्य के संस्कारों से भरे चित्त को शांतिमय बनाता चला जाऊँ। जब भी हम अपने अन्तर्‌मन को मोहमाया से, वैर-वैमनस्य से, अन्तर्द्वन्द्व से, जीवन के छातीकूटों से अपने आप को मुक्त कर लेते हैं, स्वयं को शांति, आनंद और बोधि का प्रकाश प्रदान करते हैं, तो उसी अवस्था का नाम है 'निर्वाण शान्तम्'— मुक्ति'।

मरने के बाद मिलने वाली मुक्ति अधूरी है। वह मुक्ति ही आदरणीय है जिसका हम अभी अनुभव और आनन्द ले सकें, जिसमें हम पल-पल अभी डूब सकें। और यह सब तभी सम्भव है जब हम अपने जीवन को वीणा के तारों की तरह साधेंगे। वीणा के तारों को हमेशा अपने दिलोदिमाग में याद रखते हुए, जैसे एक संगीतकार वीणा के तारों को साधता है ऐसे ही हम अपने जीवन को साधें।

जीवन तो किसी तुम्बे की तरह है, तुम्बा यों तो खारा-तीखा-कसैला होता है पर किसान उसे भी मीठा बना लेते हैं। तुम्बा तुम्बा होता है, पर अगर तुम्बे को बदलने की तकनीक हो तो तुम्बा तुम्बा नहीं रहता। तुम्बा भी तब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंबूरा बन जाया करता है। कितने मजे की बात है कि आदमी तुम्बे को तंबूरा बना सकता है, तो क्या हम अपने तुम्बे को तम्बुरा नहीं बना सकते।

जिस बाँस को लोग मरने के बाद अर्थी और अन्त्येष्टि के लिए उपयोग करते हैं, उसी बाँस का सही ढंग से उपयोग करना आ जाए तो बाँस, बाँस नहीं रहता वह बाँस भी बाँसुरी बन जाया करता है। अरे, तीन और तीन छह तो पूरी दुनिया के लिए होते हैं, पर तुम यदि अध्यात्म-पथ पर चलकर तीन और तीन तैंतीस कर सको, तो यह हुई बुद्धिमानी की बात। तीन और तीन छः तो मन्दिर के अंदर बैठने वाला तो क्या, सीढ़ी पर बैठकर मांगने वाला भी कर लेता है, मंदिर के भीतर जाने वाला तीन और तीन तैंतीस करे, तो हुई मजे की बात। मंदिर जाकर भी, ध्यान लगाकर भी, व्रत-तप-अनुष्ठान करके भी मंदिर वैसे के वैसे रहे, तो फिर झूठ-फरेबी करने वाले कौन-से बुरे हैं!

देख रहा हूँ नीचे ज्ञान-मंदिर में पिताजी महाराज का अस्थि-कलश रखा हुआ है। मैं जब भी उसके सामने जाता हूँ, तो लगता है कि यह भी एक अस्थि-कलश है और हम सब लोग भी एक अस्थि-कलश ही हैं। वह किसी ताँबे के लोटे में बन्द पड़ा अस्थि-कलश है और अपने सब लोग इस काया के कलश में पड़े हुए अस्थि-कलश हैं।

जीवन का मर्म न समझा तो हर आदमी एक अस्थि-कलश ही है। कोई बाहर का अस्थि-कलश है तो कोई भीतर का अस्थि-कलश है। जिस व्यक्ति ने इस अस्थि-कलश के मर्म को समझा, जाना, उसके लिए अस्थि-कलश के भीतर भी एक दिव्य महान आत्मा है। इस अस्थि-कलश के बीच भी परमात्मा की एक आभा व्याप्त रहती है। जिस व्यक्ति के अन्तर्मन की शांतिमय और आनन्दमय दशा है, वही इस अस्थि-कलश में रहकर अपने आप को आस्था का कलश बना पाता है।

वरना कौन नहीं जानता कि शरीर जन्मधर्मा है, शरीर अन्नधर्मा है, शरीर रोगधर्मा और मरणधर्मा है। जिस-जिस का जन्म हुआ उन-उनकी सबकी मृत्यु तो होनी ही है। सूरज उगता है तो अस्त भी होता है। फूल खिलता है तो मुर्झाता भी है। इन्सान जन्म लेता है तो मरता भी है। जब हममें से हर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी व्यक्ति को जीवन का यह बोध है तो मैं कहना चाहूँगा कि हमारी मृत्यु, मृत्यु न हो। मृत्यु के लिए किसी को प्रयास करने की जरूरत भी नहीं है, ध्यान-योग साधने की जरूरत नहीं है। मृत्यु तो अपने आप हो जाएगी। शराब पी लो मृत्यु आनी शुरू हो जाएगी; सिगरेट का धुँआ छोड़ो, मृत्यु आने लग जायेगी; अफीम खाओ, बेमौत ही मरने लग जाओगे। अरे, मृत्यु को बुलाने के लिए कोई बहुत बड़े प्रयास की ज़रूरत नहीं है। जरूरत है तो 'निर्वाणशान्तम्' अवस्था को साधने की ज़रूरत है।

मृत्यु व्यक्ति की नहीं, काया की होनी चाहिए। व्यक्ति मरे नहीं। काया मर जाए, पर वो न मरे। यह है निर्वाणशान्तम्। वो दशा 'निर्वाणशान्तम्' की दशा कहलाती है, जब व्यक्ति जन्म-जन्मांतर के संस्कारों से चित्त के प्रवाहों से मुक्त हो जाए।

जब-जब व्यक्ति अपनी प्रकृति को समझता है, जीवन की अनित्यताओं को समझता है, जीवन की अशरणभूत अवस्थाओं को समझता है, शरीर उससे भिन्न है यह सत्य समझता है, मैं अकेला आया हूँ और अकेला जाने वाला हूँ, जब कोई व्यक्ति इस मनोदशा को उपलब्ध करता है तभी किसी व्यक्ति की मोह-माया छूटती है। तभी व्यक्ति के भीतर पड़े हुए बन्ध-अनुबन्ध ढीले पड़ा करते हैं। ऐसा मत समझना कि आप घर-गृहस्थी में हैं इसलिए आप बँधे हुए हैं। अरे, महाराज बन जाओगे तब भी मुक्त होने की कौन-सी गारंटी है?

संसार और संन्यास का फ़र्क़ वेश से नहीं है। संसार एक अवस्था है और संन्यास भी एक अवस्था है। संसार मूर्च्छा की अवस्था है। संन्यास सचेतनता की अवस्था है। संसार संन्यास में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। सारा फ़र्क़ अन्तर-दशा का ही है। संसार भी एक मानसिक वस्तु है और संन्यास भी एक मानसिक वस्तु है।

एक प्रतीकात्मक शब्द लूँ - गधा। बड़ा बुरा शब्द है यह। किसी को कह दो तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। पहाड़ी पर बना हुआ यह जो साधना-सभागार है, गधों के बलबूते ही बना है। गधों की पीठ पर पत्थर, सीमेंट, कांकरी लाई गई है। गधों के प्रति भी आप सकारात्मक, रचनात्मक नज़रिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनाइये। यदि गधों के प्रति भी सकारात्मक, रचनात्मक नज़रिया अपनाया जाए, तो जिन्हें लोग गधा कहते हैं, उनसे भी किसी गणेश की प्रतिमा, किसी ध्यान-मंदिर का निर्माण किया जा सकता है, किसी महावीर के मौन को स्थापित किया जा सकता है, किसी बुद्ध की मुस्कान को, किसी राम की मर्यादा को निर्मित किया जा सकता है। तरीक़ा होगा उपयोग करने का। बाकी तो गधे-गधे ही रहते हैं। गधा कभी घोड़ा नहीं होता, गधा तो गधा ही रहता है। यदि कोई तुम्हें गधा कह दे तो बुरा मत मानना। यह मत समझना कि उसने आपको गाली दी है। हकीकत में वह गधा था, सो गधे को गधा दिखाई दिया। उसके मन में गधेपन का संस्कार है, सो गधा दिखाई देता है। यदि मन में अच्छे संस्कार होते तो वह आपको इंसानियत की नज़रों से देखता।

गधे को सब गधे दिखाई देते हैं। आदमी को सब आदमी दिखाई देते हैं। भला, दूसरों में अगर मैं भगवान देखूँगा तो तभी न् जब मैं अपने आप में भगवान देखूँगा। अपने आप में भगवान देखने वाला ही दूसरों में भगवद्-दर्शन का आनंद ले सकेगा।

गधा तब तक गधा ही रहता है जब तक अपने गधेपन का त्याग न कर दे। अगर गधा शेर की खाल ओढ़ ले, तब भी गधा शेर नहीं हो जाता है। गधा शेर तभी होता है जब व्यक्ति अपने सिंहत्व को जागृत करता है। वेश-बाना-नाम में कुछ ज्यादा वज़ूद नहीं है। जड़बुद्धि लोग वेश-बाने की पूजा करते हैं। महावीर तो पूर्ण गृहस्थ को ही सम्मान देते थे। बुद्ध अनाथपिंडक जैसे साहुकार को भी आदर देते थे। संबुद्ध लोग वस्त्र को नहीं, व्यक्ति को पहचानते और सम्मान देते हैं। भले ही, मेरे पास भी संन्यास का वेश हो, मैं संत हूँ, पर मैं संन्यास को कपड़ों से नहीं तोलता। मेरे लिए संन्यास एक अवस्था है। मैं अन्तर्-दशाओं में ही संन्यास को देखता और जीता हूँ।

मुझ पर जब कोई टिप्पणी करता है, तो मुझे संत हाकुइन याद आते हैं, जो चरित्र पर लांछन लगाए जाने के बावजूद मुस्कुराते हुए केवल इतना ही कहते हैं, 'ओह, तो ऐसी बात है। ठीक है।' जब कोई अपमानित करने वाली बात कह देता है तो मुझे स्वामी रामतीर्थ का ख़्याल आता है, जिन पर पोंछा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फेंकने वाली महिला के लिए उसी पोंछे की बाती जलाकर वे कहते हैं कि, 'उस गृहिणी का हृदय वैसे ही ज्योतिर्मय हो, जैसे पोंछे की बाती से बना यह दीपक ज्योतिर्मय है।' जीवन में याद रखने के लिए महावीर के कानों में कीलों का ठुकना याद रहता है, जीसस का सलीब पर चढ़ना, सत्य के लिए सुकरात का विषपान करना, भक्ति के लिए मीरा का दीवानापन, साधना के लिए रामकृष्ण परमहंस, मर्यादा के लिए राम-लक्ष्मण-भरत का जीवन- ये सब प्रतीक याद रहते हैं। वक्त-बेवक्त पर इन्हीं से प्रेरणा लेते हैं। मन को सहज ही संबल मिल जाता है। महान लोगों के जीवन से यदि हम प्रकाश की किरण न ले पाएँ, तो उनका चरित्र हमारे किस उपयोग का!

मेरे लिए, जीवन के प्रतीक बड़े अद्‌भुत हैं। मेरे जीवन में मेरा अगर कोई पहला शास्त्र, पहला मंदिर और पहला प्रकाशस्तम्भ है तो यही बाँसुरियाँ, यही वीणा के तार, यही तम्बुरे और वही गन्दगी कि जिस गन्दगी को लोग गन्दगी समझ कर बाहर फेंकवा दिया करते है, पर उसी गन्दगी को अगर खाद बना दिया जाए तो वही फूलों को खुशबू देने का आधार बन जाता है। भला जब बकरी की मिंगनी किसी बीज को अपना साहचर्य देकर उस बीज में फूल और फूल में खुशबू दे सकती है, तो क्या आदमी अपने प्रयास से अपने स्वभाव को सौम्य और दिव्य बनाकर क्या अपने आप को ठीक नहीं कर सकता। मैं कभी-कभी एक शब्द कहा करता हूँ और वो शब्द है DOG जिसे उलट डालने पर बनता है GOD। केवल उलटने की ज़रूरत है, पलटने की ज़रूरत है। अच्छे हो तो मत उलट बैठना अपने आप को। पर अगर लगता है कि अभी भी गधापन है भीतर, अगर लगता है कि हम साँड की तरह किसी को सींग मार ही देते हैं, किसी चण्डकोशिक की तरह जब-तब क्रोध की फुफकार मार ही बैठता हूँ। तो अपने भीतर इन दो शब्दों को उतारें— डॉग एण्ड गॉड। DOG को उलटें, अपने आप को हम GOD बनाएँ, प्रभु के दिव्य मार्ग की ओर, अनंत के मार्ग की ओर ले जाएँ।

स्वभाव को, जीवन को सुन्दर बनाने के लिए आज एक सीधा-सरल सूत्र दे रहा हूँ कि मुस्कराना सीखो, हर पल मुस्कराओ, क्षण-क्षण मुस्कराओ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं को मुस्कान का साहचर्य दो। साँस लो और मुस्कराओ। जाती हुई साँस का अनुभव करते हुए भी मुस्कुराओ। मुस्कान यानी आपकी आँखों का नूर, मुस्कान यानी आपके कानों का संगीत, मुस्कान अर्थात् जीवन की सुवास, मुस्कान यानी जीवन का स्वाद, मुस्कान यानी हर हाल में मन में आनंद। जीवन की उदासीनताओं और चिन्ताओं को दूर करने की एकमात्र औषधि है मुस्कान, अधिक से अधिक मुस्कराना। आप अपना एक ही LOGO बना लें, जीवन का एक ही महामंत्र बना लें और वो है: मुस्कान दीजिए, मुस्कान लीजिए।सबको एक ही उपहार दूँगा- मुस्कान। और सबसे एक ही सौगात लेऊँगा- इससे कम में समझौता नहीं करूँगा।

मुस्कान दिखने में सीधा-सरल शब्द है, पर अगर अपना लो तो आपके आभामंडल को बेहतर बना सकता है। जीवन की धाराओं को गंगा का पानी बना सकता है। मुरझाए फूल के लिए सूरज की किरण का काम कर सकता है। क्रोध को, अवसाद को, चिंता को, ईर्ष्या को, जीवन में घर कर चुके नुक्शों को दूर करने के लिए यह दृढ़ संकल्प ले लीजिए कि मैं हर हाल में मुस्कान से भरा रहूँगा। आप ताज्जुब करेंगे कि जीवन से अनायास क्रोध, चिंता, अवसाद, उग्रता कम होने लगी है।

तो सबको मुस्कान दीजिए। माँ को भी मुस्कान दीजिए और पत्नी को भी मुस्कान दीजिए। भाई को भी मुस्कान दीजिए और पुत्र को भी मुस्कान दीजिए। जीवन को खुशहाल बनाने का यह सीधा-सरल मंत्र है।

जाओ, जाकर किसी
मज़लूम के आँसू पोंछो।
फिर कहीं जाके ये समझोगे
इबादत क्या है?

जीवन में सच्ची इबादत क्या है? वही जो तुम मंदिर से निकलते समय करोगे, किसी अनाथ बच्चे के आँसू पोंछकर उसे मुस्कान दोगे। यदि हम अपने सौ वर्ष के जीवन में यदि सौ लोगों को भी जीवन की मुस्कान देने में सफल होते हैं, तो निश्चय ही आप सफल हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज़िंदगी के पन्नों पर
कुछ ऐसा लिखा जाए,
जो पवित्र पुस्तक-सा ही
सुबह-शाम पढ़ा जाए।

जीवन के पन्नों पर कुछ ऐसा लिखो कि वे पन्ने भी किसी गीता की तरह, कुरआन की तरह पढ़े जा सकें। तुम केवल मुस्कुराओ। खुद को लाफिंग बुद्धा बना लो। इंसान कैसा हो- एक हँसता-खिलता-मुस्कुराता बुद्ध। मैं भी लाफिंग बुद्धा हूँ और आपको भी लाफिंग बुद्धा बन जाने को उत्साहित कर रहा हूँ। आप केवल एक महीने के लिए ही सही, लाफिंग बुद्धा बन जाइए। आप इसका चमत्कार देखिएगा। जीवन के अनगिनत तनाव, खिंचाव, द्वेष, दु:ख स्वत: दूर हो जाएँगे। पत्नी इज़्ज़त दे तो भी मुस्कुराइयेगा और कोई बेइज़्ज़त कर बैठे तब भी मुस्कुराते रहिएगा।

जीवन को कृष्ण की तरह एक लीला ही बना लीजिए। शुरू में भले ही लगे कि आप नाटक कर रहे हैं, पर इसकी चिंता न करें। शुरू में कोई भी चीज नाटक ही लगती है, पर धीरे-धीरे वही जीवन की आदत में शुमार हो जाती है। सुबह उठते ही, ईश्वर को नमन बाद में समर्पित कीजिएगा, उससे पहले आधे मिनट तक मुस्कुरा लीजिएगा। दुकान में कदम रखो तो कदम बाद में रखिएगा, अपनी मनोदशा में एक मंद मुस्कान की बयार पहले बहा दीजिएगा। भोजन करो तो भोजन करने से पहले अपने अन्तर्मन को देखिएगा और उसे मुस्कान का अवलेह प्रदान कर दीजिएगा। बच्चों को पढ़ाने बैठो तो पहले मुस्कुराइएगा। रात को सोने के लिए जाओ, तो लेटने से पहले वही एक मंद मुस्कान। निश्चय ही, अब तक जो आप चिड़चिड़ाते रहे थे, खाना खाते वक्त, ग्राहक से बात करते वक्त, पत्नी और पड़ौसी से बतियाते वक्त; आप पाएँगे अब वो बात नहीं रही। अब जीवन में मिठास आने लग गई है, विनम्रता और सरलता भी आने लगी है। क्षमा की भी प्रवृत्ति जीवन से जुड़ चुकी है। यानी एक तीर से दस बीमारियाँ, जीवन की दस बुराइयाँ साफ। आशाराम बापू ने कभी एक सुन्दर-सी पंक्ति कही थी कि, 'सदा प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति है।' अब आप बताइये कि इससे बढ़िया भक्ति का आपको और कौन-सा सरल तरीका मिलेगा। 'पैसा लगे न टक्का, ढूँढिया धरम पक्का'— यह तो बिल्कुल ऐसी ही बात हुई। यों समझिए कि मैंने आपको जीवन के मंथन से निकालकर यह अमृत सूत्र प्रदान किया है।

तो आज से, लेओगे तो क्या लेओ? मुस्कान। और देओ तो क्या देओ— मुस्कान। मुस्कान दीजिए और मुस्कान लीजिए। वीणा के तारों को साधने के लिए इसे गुरुमंत्र की तरह अपने जीवन के साथ जोड़ लीजिए। मुस्कान देंगे, मुस्कान लेंगे। मुस्कान के अलावा अगर कोई और कुछ देना चाहे तो कह देना कि इच्छा नहीं है। भगवान बुद्ध को कभी किसी ने गालियाँ दी थीं, तो बुद्ध ने कहा था, 'भाई! तेरे घर कोई मेहमान आए और तुम उसे खाना परोसो। वो खाना न खाए तो माल किसका किसके पास रहेगा? जिसका है उसके पास रहेगा। उसी तरह मैंने भी तुम्हारी गालियाँ स्वीकार नहीं की हैं, तो ये गालियाँ भी तुम्हारी तुम्हारे पास ही रहीं।' बड़ी प्यारी बात है। मुस्कुराने जैसी बात है। मुस्कान को कैसे बरकरार रखा जाए, यह समझने जैसी बात है। तो भाई गालियाँ स्वीकार मत करो। लेंगे तो मुस्कान, देंगे तो केवल मुस्कान। खुद मुस्कुराना अगर पुण्य है तो दूसरों को मुस्कान देना परम-पुण्य है। मुस्कान दीजिए, मुस्कान लीजिए।

चौबीस घण्टे मुस्कराओ। लेकिन हाँ, चौबीस घण्टे जरूर मुस्कराना, पर दो मिनट ही सही प्रभु के नाम पर दो आँसू भी जरूर ढुलकाना। चौबीस घण्टे मुस्कराते रहना, पर चौबीस घण्टों में 2 मिनट ही सही प्रभु का ध्यान धरते हुए, प्रभु से अपने तार जोड़ना और उन्हें अपने प्रार्थनाभरे दो आँसू जरूर सौंपना ताकि वे पीड़ा के आँसू, वे अश्क बदल जाएँ। वे आँसू, आँसू न हों, प्रभु के चरणों में अर्पित किए जाने वाले मोती हो जाएँ।

भगवान को चढ़ाने के लिए मेरे पास धन, लक्ष्मी, पैसा तो है नहीं। मेरे पास तो प्रेम-पुष्प है, समर्पण ही अर्घ्य है, स्मरण ही प्रभु का पूजन है। जब-जब भी मैंने भगवान के प्रति प्रणत होकर भगवान से पूछा कि प्रभु मैं तुम्हें क्या चीज चढाऊँ? तब भगवान ने मुझसे यही कहा, मेरे पुत्र! चढ़ाने की चिन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ो। चढ़ा तो मैं तुम पर रहा हूँ। मैं तुम्हें सुख देता हूँ तो तुम्हें सुख मिल रहा है। मैं तुम्हें श्वास देता हूँ तो तुम्हें श्वास मिल रही है। मैं तुम्हें तुम्हारे जीवन की व्यवस्थाएँ दे रहा हूँ तो तुम्हें तुम्हारी व्यवस्थाएँ मिल रही हैं। तुम तो केवल अपने आपको मुझे दे दो, तुम केवल अपने हृदय के दो पुष्प दे दो। मैं इतने में ही आनन्दित हूँ, प्रमुदित हूँ, कृपावंत हूँ।

खुद को सौंप दो प्रभु को और फिर मुस्कुराना शुरू करो- जीवन के हर कदम पर, हर क्षेत्र में, हर दिशा और हर हाल में। आप अगर इस शिविर में सात सौ लोग हैं, और ये सात सौ लोग भी मुस्कुराने की कला सीख जाते हैं, तो निश्चय ही यह सारा शहर हँसता-मुस्कुराता गुलाब का फूल बन जाएगा। मेरे लिए इतना काफी है।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहजता को बनाइए समाधि का साधन

आज मैं आप सबको प्रेम-भाव से जीने का एक छोटा-सा सीधा-सरल मंत्र दूँगा। इस मंत्र ने मेरे आध्यात्मिक विकास में भी अहम भूमिका निभाई है और आपके लिए भी यह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। वर्षों-वर्ष पहले मैंने अपने जीवन के साथ एक छोटा-सा मंत्र जोड़ा था जिसे जीते हुए मैंने जीवन को अहोभाव से जीने का आनन्द लिया और उसमें आने वाली बाधाओं का भी आनंद-भाव से सामना किया। आध्यात्मिक शांति, शक्ति और सौन्दर्य का वह मंत्र है— सहजता।

सहजता— मेरे लिए सुख, शांति, आनंद और मुक्ति का पहला साधन है। यह समाधि का पहला सोपान है। इतने-इतने वर्षों तक इस मंत्र को जीने के बाद ही अपने साधक भाई-बहनों से यह निवेदन कर रहा हूँ कि व्यक्ति की आध्यात्मिक शांति और मुक्ति के लिए सहजता पहली सम्पदा है। सहजता ही साधना का प्रस्थान बिन्दु है, सहजता ही साधना का मध्य पड़ाव है और सहजता में ही साधना की अन्तिम परिणतियाँ हाथ लगा करती हैं। सहजता ही समाधि का साधन है और सहजता ही प्रभु के राज्य में प्रवेश पाने का रास्ता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहजता यानी हर हाल में मस्ती, हर हाल में आनंद-दशा। जीवन में जब-जो-जैसा उदय में आना है, उस हर उदय-अवस्था को विधाता की व्यवस्था मानकर स्वीकार कर लेना - यही है सहजता।

चाहने के नाम पर सुख हर कोई चाहता है। हर कोई व्यक्ति ईश्वर से भी सुख की ही प्रार्थना और कामना करता है। पर अद्‌भुत! सुख चाहने पर भी उसे सुख नहीं मिलता। इसी की जगह, दु:ख कोई नहीं चाहता। पर इसके बावज़ूद जीवन में दु:ख हर किसी को मिलते हैं। दु:ख की अवस्थाओं से हर किसी को गुजरना पड़ता है। बुढ़ापा सबके लिए दुखदायी है, रोग सभी के लिए कष्टकारी है, अच्छी पत्नी, अच्छी संतान, अच्छा मित्र, अच्छा व्यवहार, अच्छे सुख-साधन हर कोई चाहता है, पर इसके बावज़ूद पत्नी के कलह को बरदाश्त करना पड़ता है, बच्चे सबके लिए टेंशन का कारण बनते हैं, दोस्त सबको दग़ा देते हैं। दु:ख कोई नहीं चाहता, फिर भी दु:खों के प्रवाह में सबको बहना पड़ता है। अपने भी अनेक दफा आलोचक बन जाते हैं, वहीं पराये भी प्रशंसक और सहयोगी बन जाते हैं। सहजता की साधना हमें अनुकूल परिस्थितियों में तो सहज रहने की प्रेरणा देती ही है, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुकूल और सकारात्मक मानसिकता बनाये रखने का पाठ पढ़ाती है।

सहज यानी हर हाल में सहज! मैं कभी मज़ाक में कहा करता हूँ— आग लगे बस्ती में पर अपन रहेंगे मस्ती में।' कोई सम्मान दे, उसकी मौज, कोई अपमान दे, उसकी मौज। तेरे सम्मान देने से मैं कोई बहुत अच्छा नहीं बना। तेरे अपमान देने से मैं कोई बुरा आदमी नहीं बना। जब जैसी मानसिक स्थिति होती है, व्यक्ति तब वैसा ही स्वयं को व्यक्त करता है। नकारात्मक भाव-दशा पैदा हो जाए, या अन्यथा-भाव किसी के दिमाग में घर कर जाए, तो वह हमारे प्रति अन्यथा आचरण ही करेगा। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए ही 'निरपेक्षता' का भाव अपनाइए। अनुकूलताओं में सभी अनुकूल रहते हैं, पर प्रतिकूलताओं में भी स्वयं को सहज-सौम्य रख लेना - यही जीवन की आध्यात्मिक सफलता है।

ध्यान रखिए, मनुष्य की मानसिकता बदलती रहती है। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तनशील है। किन्हीं निमित्तों को पाकर वह अनुकूल बन जाती है, किन्हीं निमित्तों को पाकर वह प्रतिकूल बन जाती है। जीवन के इस सत्य को, इस मर्म को समझ लिया जाए, तो जीवन के हर अनुकूल-प्रतिकूल निमित्तों को जीना, उससे सहजतया गुजरना हमारे लिए मुमकिन हो सकता है। नहीं तो, यह दुनिया हमारा हाल वही करती है जो किसी के लिक्विट ऑक्सीजन में गिरने से होता है। लिक्विड हमें जीने नहीं देता और ऑक्सीजन हमें मरने नहीं देता। यह दुनिया तो जीसस जैसे देव-पुरुष को भी सलीब पर चढ़ा देती है और महावीर जैसे महापुरुष के भी कानों में कीलें ठोक देती है। सुकरात जैसे सत्य-पुरुष को भी विषपान करा देती है तो मंसूर जैसे महान् संतों के भी हाथ-पाँव काट देती है। दुनिया तो चढ़ने पर भी हँसती है, और उतरो तो उतरे पर भी हँसती है। निकम्मे, फालतू, ठाले बैठे और भला कर भी क्या सकते हैं?

कबीर की मानो तो—

तू तो राम सुमिर जग लड़वा दे।
हाथी चलत है अपनी गति से,
कुतर भुंसत वा को भुंसवा दे।
तू तो राम सुमिर जग लड़वा दे।

तुझे तो जो करना है, तुम तुम्हारे करते जाओ। हाथी अगर कुत्तों के भौंकने की परवाह करता रहेगा, तो जी लिये गजराज! 'हाथी चलत है अपनी गति से'। हाथी से सीखें उसकी सहजता और हिरण से लें उसकी सरलता। याद रखिए प्रभु के राज्य में वही प्रवेश पाता है जो सहज-सरल-निश्छल होता है।

अगर हम मीरा जैसी अमृत-साधिकाओं के शब्दों का मनन करें, तो लगता है कि मीरा को उसका भगवान बहुत सहज में ही मिल गया था। जिस भगवान को पाने के लिए योगियों ने हिमालय की गुफाओं में जाकर योग किया होगा, मीरा को वही भगवान कभी सपनों में मिल जाया करते तो कभी विष का प्याला होठों से छूते हुए मिल जाया करते। तभी तो मीरां ने कहा था- 'सहज मिले अविनाशी'।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह अविनाशी और नश्वर सहज में ही व्यक्ति को आकर मिल जाता है। कभी कबीर जैसे लोगों ने कहा था- 'सहज समाधि भली'। जो समाधि सहज में लग जाए, वही समाधि अच्छी है।

सहज मिले सो दूध सम,
माँगा मिले सो पानी।

जीवन में सहजता को जीने के लिए मैंने कबीर के इस दोहे का खूब आनन्द लिया है और हर विपरीत घड़ी में, जब भी ऐसी वैसी परिस्थितियाँ बनीं इस दोहे को याद कर-कर मैंने जीवन को सहजता का सुकून दिया है।

सहज मिले सो दूध सम,
माँगा मिले सो पानी।
कह 'कबीर' वह रक्त सम,
जामें खींचा-तानी॥

जीवन में जो सहजता से उपलब्ध हो जाए, वह दूध के समान है, किसी से माँगकर, किसी की ख़ुशामदी करके मिले, वह पानी के समान है। पर जिसमें खींचतान होती है वह रक्त के समान है, भले ही उसमें कितनी ही बड़ी दौलत क्यों न समाई हो। प्रेम का पानी ज्यादा अच्छा है, दान का दूध पीने की बजाय। शबरी के जूठे बेर और विदुर के केले के छिलके भी मजा दे जाते हैं, दुर्योधन जैसों के मेवों की बजाय।

तो जीवन का पहला और आख़िरी मंत्र है- सहजता। सहजता यानी सहज मुस्कान, सहज व्यवहार, सहज क्रियाकलाप, सहज उपलब्धि। जीवन को जितनी सहजता से जीओगे, जीवन उतना ही सुख, शांति और मुक्ति की तरफ बढ़ता जाएगा। जीवन को हम जितना अधिक आरोपित, कृत्रिम, बनावटी, दिखाऊ जीते रहेंगे, व्यक्ति की शांति और मुक्ति उससे उतनी ही दूर होती जाएगी।

कहते हैं : कुछ मज़दूर बड़े-बड़े खंभों को उठा रहे थे। खंभे इतने भारी थे कि मज़दूर पसीने से तरबतर हो रहे थे। ठेकेदार उनसे जल्दी करने का कह रहा था। तभी एक राहगीर ने ठेकेदार से कहा, 'भाई, इन बेचारों के काम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में आप हाथ क्यों नहीं बँटाते?' यह सुनते ही ठेकेदार आपे से बाहर हो गया। उसने कहा, 'तू नहीं जानता मैं कौन हूँ? मैं हूँ इनका ठेकेदार।' यह सुनकर राहगीर मुस्कुराया और कहा, 'अच्छा, मैं इनकी मदद कर देता हूँ।' राहगीर चुपचाप मज़दूरों के साथ खंभे उठाने में मदद करने लगा। ठेकेदार ने पूछा, 'अबे, तू कौन है?' अज़नबी ने कहा, 'आप मुझे नहीं जानते? लोग मुझे नेपोलियन कहते हैं।'

ठेकेदार को काटो तो खून नहीं। क्योंकि फ्रांस का बादशाह उसके सामने था।

मैं इसे कहता हूँ सहजता। नेपोलियन की यह सहजता ही उसके जीवन की महानता है। सहज लोग बड़े होकर भी अपने आपको सहज ही रखते हैं।

स्वामी रामतीर्थ के बारे में कहते हैं कि रामतीर्थ जब पहली बार अमेरिका गए तो समुद्र-तट पर वे जहाज पर इधर से उधर घूमने लगे। एक अमेरिकी यात्री ने उनसे कहा, 'महाशय, आप अपना सामान उठाइए और चलिए।' रामतीर्थ ने कहा, 'मेरा सामान तो मेरा शरीर ही है। इसके सिवा मेरे पास कुछ नहीं है।' यात्री ने फिर पूछा, 'यहाँ आपका कोई मित्र है?' रामतीर्थ ने कहा, 'हाँ, एक है।' यात्री ने पूछा, 'कौन?' रामतीर्थ ने उस यात्री के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'आप।'

यह सुनते ही वह अमेरिकन यात्री स्वामी रामतीर्थ से प्रभावित हो गया और वह रामतीर्थ को मित्र कहने के कारण अपने घर ले गया। रामतीर्थ उसी के घर रुके। आपने देखा जीवन की इस सहजता को? सहजता यानी नैसर्गिकता। आप अपनी बोली में, अपने व्यवहार में, अपने जीने के तरीक़े में, सबमें सहजता रखिए।

जीवन में न कुछ बुरा है, न कुछ अच्छा है। हर विपरीत परिस्थिति में सोचिए हर अच्छा-बुरा एक होनहार है। जहाँ हर होनी का स्वागत करने का भाव हो, वहीं सहजता सुरक्षित रह पाती है। शायद कोई व्यक्ति आपको सम्मान दे जाए, तो आप कहेंगे 'शुक्रिया'। पर मैं अनुरोध करना चाहूँगा कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आप किसी के अपमान दिये जाने पर भी कहिए- 'आइए, आपका स्वागत है।

सम्मान अदा करने वालों को शुक्रिया अदा करना सद्व्यवहार है। तुम तो किसी को देखते ही अपने स्वागत-भाव का, अपने अभिवादन का, अपने प्रेम का पुष्प, उस पर लुटा दो। तुम्हारे द्वारा दिया जाने वाला स्वागत-भाव तुम्हें तो धन्य कर ही रहा है, अगले को भी अभिभूत कर रहा है। यही तो ज़िन्दगी को सहजता से जीने का आनंद है।

जीवन में किसी का सन्त और साधक होने का मज़ा ही यही है कि व्यक्ति ने अपने-आप को घेरों से मुक्त कर लिया। अब तो जो सहज में होगा, उस हर मिलन का आनंद है। हम सब अपने मन को, अपनी मानसिकता को, अपने विचारों को संत की बना लें। जिनकी सोच में संताई हो, वही वास्तव में संत है।

सहजता से जीओ तो न कभी चिन्ता होगी, न कभी तनाव होगा। सहजता से जीते हो तो ध्यान में मन लगाने का उपक्रम भी नहीं करना पड़ता है। सहजता से जीने वाले व्यक्ति के लिए तो अगर बैठा है तो भी सहज समाधि है। अगर चल रहा है तब भी सहज समाधि है। वह अपनी मस्ती में है। अपने भीतर की अलमस्ती में है। और अपने भीतर की अलमस्ती को जीना, पल-पल अपने में आनंद लेना - इसी का नाम योग और समाधि है।

जब तक योग और ध्यान को भी आरोपित करते चले जाओगे, तब तक योग और ध्यान भी तुम्हें सहज लगेंगे, वहीं अगर ध्यान-योग को सहजता से ले लो, तो ध्यान धरना भी सागर में नौका-विहार की तरह हो जाएगा। 'हँसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्' तब हँसना-खेलना भी ध्यान ही हो जाएगा।

दुनिया में कोई कबड्डी खेलता है तो कोई गुल्ली-डण्डे खेलता है। मैं ध्यान में खेलता हूँ। मैं अपने में अपना आनंद लेता हूँ। मेरे लिए जीवन एक उत्सव है, आनंद का उत्सव! इन्द्रधनुष के रंगों का उत्सव!

सहजता से जीने वालों के लिए ज़िन्दगी आनंद का गलियारा है, उनके लिए ज़िंदगी एक मज़ा है। जीना न आए तो ज़िंदगी खुद ही एक सजा है। जिन लोगों ने जीवन के मर्म को न समझा, वे ही लोग व्रत-तप के अनुष्ठान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। जिन्होंने जीवन के उतार-चढ़ावों को समझा है वे जानते हैं कि जीवन को सही ढंग से जीना भी बहुत बड़ी तपस्या है।

ज़रा अपने जीवन पर ग़ौर करके तो देखो! कितने छातीकूटों से गुजरना पड़ता है। कितनी बार पति के साथ समझौता करना पड़ता है। कितनी बार सास की टोंटबाजी बरदाश्त करनी पड़ती है। अथवा कितनी बार बहू की अमर्यादा के कारण लज्जित होना पड़ा है। कितनी बार बड़े अधिकारी की फटकार सुननी पड़ी है। कितनी दफा कमाई न होने के बावज़ूद जवांई की खातीरदारी के लिए कर्ज़ करना पड़ा है! क्या इस सारे तिलिस्म से गुजरना तपस्या नहीं है?

मंगलवार और एकादशी के व्रत से कठिन तपस्या है यह। भूखे मरने में कोई खास बात नहीं है। किसी के द्वारा कहे गए कड़वे वचन को सहजता से सह लेना खास बात है। कहते हैं, महावीर ने अपने संन्यास काल में बमुश्किल कभी-कभार खाना खाया। पर मेरे देखे, भूखे रहना उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी महावीर के द्वारा कानों में ठोके गए कीलों को बर्दाश्त करना बड़ी बात है। किसी के द्वारा दिए जाने वाले अपमान के कीचड़ को मुस्कुराते हुए सह जाना कठिन है। जीवन को यदि सहजता से जीओ तो कोई कठिन, कठिन नहीं लगता। गाली सुनकर सबको गुस्सा आता है पर सहजता से जीने वाले गाली को भी सहजता से ले लिया करते हैं।

मैं संत हाकुइन के जीवन से प्रेरित-प्रभावित रहा हूँ। संत हाकुइन पर जब चारित्रिक लांछन लगाते हुए कहा जाता है कि आपके पड़ौस में रहने वाली लड़की से होने वाली अवैध संतान आपकी है, तो हाकुइन का इतना ही ज़वाब होता है, 'ओह, ऐसी बात है। ठीक है।' जब रहस्य खुलता है और लोगों को हकीकत का पता चलता है तो खेद-ज्ञापित करते हुए लोग कहते हैं, 'क्षमा करें गुरु, हमारे द्वारा बहुत बड़ी गलती हो गई।' हाकुइन का तब भी वही सहज ज़वाब होता है, 'ओह, तो ऐसी बात है। ठीक है।'

यह है सहजता की ज़िन्दगी। यह है साधना। यह है आध्यात्मिक नज़रिया। जहाँ व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों को भी इस तरह से सहजता से ले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेता है वही अपने जीवन में, अपनी अन्तर्आत्मा में साधना की सच्ची इबादत कर पाता है। वही अपनी मुक्ति को साध पाता है। बाकी अपने अन्तर्मन के घेरों से मुक्त होना कोई इतना आसान है? महावीर और बुद्ध जैसे दिव्य पुरुषों को भी वर्षों वर्ष लग गए थे।

अपने-अपने मन के तिलिस्म से, कषायों और लेश्याओं के घेरों से मुक्त होना बग़ैर सहजता और सचेतनता के सम्भव नहीं है।

ध्यान आपको जीवन की सहजता देता है। ध्यान यानी रिलेक्सेशन। शरीर को, दिमाग को, मन को, बुद्धि को, प्राणों को रिलेक्सेशन प्रदान करना ध्यान की पहली प्रेरणा है। आप अपने आपको देखिए कि आप टेंशन में हैं या रिलेक्स हैं? आप आनंदपूर्ण हैं या चिंताओं से घिरे हुए हैं? शोकाकुल हैं या गुलाब की तरह खिले हुए हैं? यदि जीवन के नेगेटिव परिणाम हैं तो 'सहजता' को जीवन का मंत्र बना लीजिए। चिंताओं को छोड़िए, शांति को मूल्य दीजिए। स्वयं को शांतिमय और आनंदमय बनाएँ। जो हो गया, उसे भूल जाइये। वह वक्त की ऐसी लहर थी, जिसे लौटाया नहीं जा सकता। बीती को भूलिए और अनबीते के नक्शे बनाने की हुज्जत छोड़िए। स्वयं को सहज बनाइये। आप अधिक स्वस्थ, सुखी और आनंदपूर्ण जीवन जी सकेंगे।

आदमी चाहे बच्चन हो या बिड़ला, अमिताभ हो या अम्बानी, खाते तो सभी बारह रुपये किलो का आटा ही हैं। फिर चिंता किस बात की? संकल्प कर लीजिए कि ज़िन्दगी को जीयेंगे तो सहजता से जीयेंगे। जो होना है सो हो जाएगा। जो होगा हर होनी का स्वागत कर लेंगे। मौत आनी है मौत का स्वागत करेंगे ज़िन्दगी है तो ज़िन्दगी का स्वागत करेंगे। इस पल अगर धर्मराज आ कर कहे कि तुम्हारे लिए यह पल ज़िन्दगी का है तो हम ज़िन्दगी का आनन्द लेंगे। अगर यमराज आकर कहें कि यह पल तुम्हारे लिए मृत्यु का पल है, तो मृत्यु का भी आनन्द लेंगे।

हम बस आनन्द लेना सीखें। ज़िन्दगी के हर पल का आनन्द लेना सीखें। हर पल अपने आप में नया जीवन है। एक नया अवसर है। हँसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्। हँसो, खेलो और ध्यान धरो। अगर किसी ने आपका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपमान कर दिया है तो निश्चय ही पीड़ा तो हुई पर यह ज़रूरी थोड़े ही है कि अब तुम अपना सारा ध्यान इसी पर देते रहो।

आनन्द लेने के लिए तो अपने-आप को देख लो, आनन्द मिलने लग जाएगा। यदि तुम्हारी पत्नी तुम्हें झिड़कती हो तो उसके पास क्यों बार-बार अपना नाक रगड़ने के लिए जाते हो। किसी बगीचे में चले जाओ। कोई प्यार भरा गुलाब का फूल खिला हुआ है, उसी को जाकर अपना प्यार दे दो। उसी से प्यार ले लो। तुम अगर फूलों की गुलाबी कोमल पत्तियों को अपने होठों का स्पर्श देओगे, उन्हें प्यार करोगे तो वह फूल तुम्हें कहीं ज्यादा सुख देगा। कम-से-कम झिड़की देने वाली पत्नी के आगे नाक रगड़ने से तो फूलों का सान्निध्य पाना अधिक श्रेष्ठ है।

किसी का फोटो अख़बार में छपता है, तो लोग अपने फोटो को देखकर ख़ुश होते हैं। फोटो छपना अच्छा लगता है; पर रोज-रोज तो फोटो छप नहीं सकता। आनंद तो रोज-रोज लिया जा सकता है। जब भी अपना फोटो देखने की इच्छा हो जाए, आईने में देख लिया करो। जैसा चाहो, वैसा फोटो दिख जाएगा।

आनन्द तो लेना आना चाहिए। जो आनन्द लेना नहीं जानते वे वास्तव में जीवन को जीना नहीं जानते। वे किसी लाफिंग क्लब में जाकर कृत्रिम ठहाका लगाया करते हैं। जिनको जीना आता है वे तो सहज में ही गुलाब के फूल बन कर जीते हैं।

फूल तो रात को मुरझा जाता होगा मगर सहजता से जीवन जीने वाला व्यक्ति रात को अगर बाथरूम में भी जा रहा है तो बाथरूम का दरवाजा बाद में खोलेगा पहले मुस्कराएगा। जिसने जीवन दिया है उसके लिए मुस्कराएगा। जीवन का आनंद लेते हुए मुस्कुराएगा। ज्यों-ज्यों ध्यानयोग हमारे अन्तर्मन के साथ आत्मसात होता जाएगा, यह मुस्कान विस्तार लेती जाएगी।

प्रकृति और परमात्मा के घर से जो भी अवसर मिले, उसका आनंद लो। परमप्रभु के प्रति अभिवादन करो कि उसने आपको योगमय जीवन जीने का अवसर दिया। नहीं तो हो सकता है कि आप घर-गृहस्थी की चक्की में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिस रहे होते। आपको यह सौभाग्य दिया है, आपके जीवन में पुण्य की एक किरण प्रदान की है कि आप यहाँ हैं प्रभु के भजन में, प्रभु के ध्यान में, श्वास-श्वास में प्रभु के खजाने का आनंद ले रहे हैं।

अब देखो यह बहन यहाँ बैठी है और इनका पति ऑफिस में बैठा हुआ उलटे-सुलटे कर रहा है। तो पुण्य इनके प्रबल हुए हैं और उनके पुण्य प्रबल होने में अभी वक्त लगेगा। साधुवाद दो ईश्वर को कि हे ईश्वर! तुम्हारी शुक्रगुजारी है कि तुमने मुझे शांतिमय, आनंदमय, प्रज्ञामय होने का अवसर प्रदान किया।

मैं तो अन्तर्मन में जीवन का पल-पल आनंद लेता हूँ। इसीलिए ज़िन्दगी की धन्यता की बातें करता हूँ। आनन्दित हूँ इसलिए आनन्द बाँटता हूँ। मुस्कराता हूँ इसलिए मुस्कान देता हूँ और मुस्कान लेता हूँ। अगर कोई मुझे कुछ देना चाहे तो मुस्कान दे जाए। अगर कोई मुझसे कुछ लेना चाहता है तो मुस्कान ले जाए। हर मुस्कान किसी स्वर्ण-कण की तरह बेशकीमती है, हर मुस्कान जीवन की एक किरण है।

याद रखो, ज़िन्दगी रोने के लिए नहीं है। ज़िन्दगी भगवान ने रोने और मुर्झाने के लिए थोड़े ही दी है। ज़िन्दगी जीने के लिए दी है और जीओगे तभी जब जीवन के प्रति उत्साह और ऊर्जा का भाव होगा।

इसलिए छोड़ो चिंताओं को, आपाधापियों को। सहजता से जीओ। जो है उसे स्वीकार कर लो। जिन परिस्थितियों का सामना करना उचित हो, उनका सामना कीजिए। बाकी जो भी है, उससे समझौता कर लीजिए और मस्त हो जाइए। जो होना था, हो गया। जो होना होता है, आखिर तो वही होता है। जो हुआ, जिसके लिए आज हम चिन्ता करते हैं हमने उसे घटित नहीं किया। वह अपने आप हुआ। अपने आप जो छींका टूट गया, उसके लिए कैसा टेंशन?

हाँ, यह देखो मेरे सामने घड़ी है। यदि मैं इस घड़ी को उठाकर फेकूँ और यह घड़ी टूट जाए तो उस बात को लेकर अगर मैं चिन्ता करता हूँ तब तो बात सोचने जैसी है। मैं बेवकूफ निकला कि मैंने इस घड़ी को उठाया और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फेंका, अपना नुकसान कर डाला, तो ऐसी स्थिति में ज़रूर सोचना चाहिए पर आप यहाँ खड़े थे और अचानक आपके घर की एक दीवार या दीवार-घड़ी गिर पड़ी। अब उस चीज को लेकर अगर आप सोच रहे हैं तो यह मानसिक कमजोरी है। आप अगर अपनी नौका डूबाओ तो चिन्ता जरूर करना पर अगर सागर ने हमारी नौका डूबा दी है तो इसको लेकर चिंता मत करना। वह भवितव्यता थी। होना था, सो हो गया।

जानबूझ कर की गई ग़लती को सुधारने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए पर जो अनजाने में हो जाए उसे प्रकृति की व्यवस्था मानकर स्वागत कर लेना चाहिए।

एक प्यारी-सी कहानी है : एक पिता के तीन पुत्र थे। बड़े पुत्र को उसने अपनी सारी ज़मीन दे दी। मंझले बेटे को उसने अपना सारा ख़ज़ाना-जवाहरात दे डाला। मगर जो सबसे छुटका था - गुड्डू, उसे उन्होंने नौपरिवहन से जुड़ा व्यापार दिया। उसे साथ ही एक अंगुठी भी दी। पिता बोले, 'बेटा तुम मेरे सबसे प्यारे बेटे हो। सबके पास व्यापार है सो मैंने बड़े और मंझले बेटे को जो-जो योग्य समझा उनको दे दिया, पर मरने से पहले मैं तुम्हें एक खास चीज दे कर जाता हूँ।' उन्होंने उसे एक अंगूठी दी और कहा, 'बेटा, इस अंगुठी को हमेशा अपने पास रखना। हालांकि तू बहुत समझदार है, अपनी ज़िन्दगी आराम से जी लेगा। तू व्यापार करने में भी निपुण है, मगर तू अभी छोटा है, सो पिता का छोटे के प्रति ज्यादा दायित्व होता है। मैं तुम्हें यह एक अंगूठी देकर जा रहा हूँ। यह तुम्हारे जीवन में 'संकट-की-सलाहकार' साबित होगी। इसे तुम अपना गुरु समझना। अगर तुम्हारे सामने ऐसी कोई नौबत आ जाए कि तुम झेल न पाओ, सामना न कर पाओ तब इस अंगूठी का उपयोग करना। इसमें एक रहस्य छिपा हुआ है।' यह कहकर पिता चल बसे।

अनुज अपना जीवन जीता रहा। वह जहाजों का व्यापार कर रहा था और उसके पास तीन-तीन जहाज थे। खुदा न खास्ता, होनी को कौन टाल सकता है। होनी तो होकर रहेगी। होनी तो होती ही है। इधर तीर का लगना, उधर आँख का फूटना। तुम दोष तीर को देते हो। आँख फूटनी थी तो तीर का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगना हुआ। नहीं तो इतने साल तो एक्सीडेंट न हुआ, न तीर लगा, न कोई तक़लीफ हुई। वेदना का तुम्हारे जीवन में उदय आना था, इसलिए ऐसा घटित हो गया।

छुटके के तीन जहाज, पर ऐसा समुद्री तूफान उमड़ कर आया कि कतारबद्ध चल रहे तीनों जहाज एक साथ डूब गए। अब अगर तीनों जहाज एक साथ डूब जाए तो आप सोच सकते हैं कि उस आदमी की हालत क्या हुई होगी। वो तो एक तरह से विक्षिप्त जैसा हो गया कि अब मैं जीऊँगा तो जीऊँगा कैसे, कैसे लेनदारों को चुकाऊँगा। बड़े ही विचित्र भँवर में फँस गया। सागर के किनारे पर अपने टूटे-फूटे हुए जहाजों के टुकड़ों को देखकर वह रो पड़ा, टूट सा गया।

दिल से टूट पड़ा कि तभी उसे अपने पिता की याद आई। उन्होंने कहा था कि बेटा जब तुम्हारे सामने ऐसी कोई नौबत आ जाए कि जिसका सामना तुम न कर पाओ तो इस अंगूठी का उपयोग करना। और उसने तब अंगूठी देखी। उसने देखा कि अंगूठी चमक रही है। उसने अंगूठी को पत्थर पर घिसा, पर कुछ पकड़ में नहीं आ रहा है। पत्थर पर घिसा। घिसता रहा। घिसता रहा। और घिसते-घिसते उसने देखा कि अन्दर से कुछ लिखा हुआ नजर आने लगा। ध्यान से देखा। पढ़ न पाया। मैग्नीफाइंग ग्लास लाकर उससे पढ़ने लगा और चौंक पड़ा।

उसमें लिखा हुआ था— 'मेरे प्यारे बेटे, चिन्ता मत कर। यह वक्त भी बीत जाएगा। दिस टू विल पास। यह भी बीत जाएगा।' उसने वह मंत्र पढ़ा। इस मंत्र ने उसे ढाढस दिया। उसने एक लम्बी निःश्वास छोड़ी और उन टुकड़ों को छोड़कर वहीं से घर की तरफ लौट आया।

तब कहते हैं उस व्यक्ति ने जीने का वह राज समझ लिया कि जब वह न रहा तो यह भी नहीं रहेगा। जब यह न रहेगा तो कल वाला कौनसा रह पाएगा। जिस व्यक्ति ने अपनी ज़िन्दगी में यह पाठ पढ़ लिया, उसके भीतर जिस तत्त्व का जन्म होता है उसी का नाम है शांति, उसी का नाम है संतोष। उसी का नाम है जीवन की समझ। वह सम्हला। उसने पूरे आत्मविश्वास के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ फिर अपना व्यापार शुरू किया। वह फिर पाँवों पर खड़ा हो गया। आज वह व्यक्ति फिर से अधिसंपन्न है। फ़र्क़ केवल इतना ही है कि पहले वह कर्त्ता-भाव से घिरा था। अब वह अकर्त्ता भाव का मालिक है। अब वह हर हाल में सहज और आनंदित रहता है। अब वह साधक है।

उससे पहले व्यक्ति व्यक्ति होता है, मगर व्यक्ति जब अपनी ज़िन्दगी में ऐसी कोई ठोकर खा चुका होता है तो उसी में से जिसका जन्म होता है उसे हम कहते हैं 'साधक'।

एक तो व्यक्ति को पैदा माँ करती है, पिता पैदा करते हैं और एक पैदा व्यक्ति स्वयं अपने आप को करता है। ध्यान अपने-आप को पुनर्जन्म देने का एक चरण है। ध्यान में व्यक्ति स्वयं अपने आप को पैदा कर रहा है। अपने को, अपनी शांति को, अपने आनंद को। ध्यान में हम स्वयं को स्वयं के द्वारा जन्म दे रहे हैं। संबोधि-साधना के मार्ग पर चलकर हम स्वयं को शांतिमय, आनंदमय और समाधिमय बनाने का ही उपक्रम कर रहे हैं।

हम अपने साँस-साँस में आनंद लें। साँसों में जीवन का ख़ज़ाना है। हर साँस प्रभु की कृपा है। हर साँस के प्रति उत्साह हो, हर साँस के प्रति उमंग हो। आती-जाती हर साँस के साथ यह एकाग्रता, एकलयता, मानसिकता, यह भावना प्रगाढ़ होती रहे- मैं स्वयं को सहज-स्वस्थ, शांतिमय और आनंदमय बना रहा हूँ। मानो हम किसी बोधि-वृक्ष के नीचे बैठकर शांति का, आनन्द का अनुष्ठान कर रहे हैं। ध्यान धर रहे हैं, यानी पल-पल स्वयं के अस्तित्व का अनुभव कर रहे हैं। स्वयं के भीतर उतरकर स्वयं का आनंद ले रहे हैं।

याद रखिए बुद्ध भी कभी आप जैसे ही थे, मीरा भी कभी हम जैसी ही थी, पर जब लौ लग गई प्रभु से, जब लगन लग गई स्वयं से, तो आदमी निरा बुद्धू ही क्यों न हो, बुद्ध बन ही जाता है। मन कितना ही विक्षिप्त या पाग़ल क्यों न हो, आखिर महावीर बन ही जाता है।

आज सुबह ही एक सज्जन पूछ रहे थे, 'भन्ते, क्या आपको सुख की नींद आई।' मैं मुस्कुराया। मैंने कहा, 'जिसके मन में कोई चाह नहीं, चिंता नहीं, किसी से कोई ईर्ष्या नहीं, उसकी तो रात भी सुख की ही बीतती है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय ही एक समय मैं भी मिट्टी ही था। मिट्टी का अहसास तो अब भी है। पर अब मिट्टी मिट्टी नहीं है। अब मिट्टी में से मूर्ति साकार हुई है। अब उस मिट्टी में भी मूर्ति का आनंद है। पत्थर भले ही पत्थर क्यों न हो, पर जीवन के साथ कुछ घड़ने का प्रयोग करो, तो वही पत्थर मंदिर का भगवान बन जाता है। व्यक्ति अपने उसी पत्थर को ही तो घड़ने के लिए विद्यालय जाता है, शिक्षकों की शरण लेता है, ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आता है, गुरुजनों और शास्त्रों का प्रकाश पाता है, ध्यानयोग भी उसी का ही एक अगला चरण है। बौद्धिक तल पर तो शिक्षित हो गए, अब हम मन और प्राणों की गहराई में उतरकर आत्मिक तौर पर, आध्यात्मिक तौर पर स्वयं को सुन्दर, सशक्त और आनंदपूर्ण बना रहे हैं। जहाँ पत्नी का प्रेम, बच्चों का ममत्व, व्यापार की सफलता भी व्यक्ति को अन्तर-तृप्त नहीं कर पाती है, ध्यानयोग हमारे अस्तित्व की गहराई के साथ हमें जोड़कर हमें वास्तविक रूप से शांतिमय और समाधिमय करता चला जाता है। जैसे विद्यालय में जाकर आपने विद्यार्जन के लिए श्रम किया है, अध्यात्म के इस मंदिर के लिए भी आपको उतना ही श्रम करना होगा। बाहर की विद्या और भीतर का ज्ञान - दोनों मिलकर ही जीवन को पूर्णता देते हैं।

इसलिए लगे रहो। मन को सदा उन्नति की ओर, आकाश की ओर, मुक्ति की ओर ले जाते रहो। कमजोर मन से ध्यान करोगे तो शरीर असहज लगेगा या चित्त भटकाएगा। इसका दोष ध्यान को नहीं हमारे कमजोर मन को है। अगर पूरी सुदृढ़ मानसिकता के साथ ध्यान में उतरोगे तो पंगू भी पहाड़ चढ़ जाते हैं और अंधे भी जंगल पार कर जाते हैं। जिस व्यक्ति ने अपनी ज़िन्दगी में नौवीं कक्षा भी सप्लीमेंट्री से पास की थी, वही उस परावस्था को उपलब्ध कर लेता है कि आज दुनिया भर में उसे सुना और पढ़ा जाता है।

दुनिया में चाहे कोई कुलपति भी क्यों न हो, बचपन में तो हर कुलपति भी तुतलाता ही है। आखिर, दुनिया के बड़े-से-बड़े ज्ञानी और दार्शनिक को भी बाहरखड़ी सीखने से तो गुजरना ही पड़ता है।

अपने संकल्पों को, अपनी ध्यान-धारणा को, अपने मन को सुदृढ़ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदान करें कि मैं तब तक, ध्यान का सघन और निरन्तर प्रयोग करूँगा जब तक कि मैं अपने भीतर अपनी सचेतनता को न साध लूँ, अपने में उतरकर अपनी वास्तविक शांति को उपलब्ध न कर लूँ, अपने में अपनी आत्मशक्ति, अपने आत्म-स्वरूप का बोध न प्राप्त कर लूँ तब तक मैं लगा रहूँगा। यह धुन ही, यह लगन ही हमें साईं से मिलन करवाएगी।

हमारे अन्तर्मन की यह सुदृढ़ता हमें देह-भाव से ऊपर कर देती है और यही विदेह-अवस्था हमें हमारी साधना को सफलता दिया करती है। मेरी जो बातें पल्ले पड़ गई हैं, गाँठ बाँध लीजिए। 'हीरा पायो गाँठ गठियायो।' अपने-अपने पल्ले में गाँठ बाँध लें। बाकी की बातें शून्य आकाश में विलीन हो जाएँ।

कुछ देर के लिए पलकों को झुका लीजिए और ध्यान की दशा से गुजरिए। .....आती-जाती साँसों पर ध्यान दीजिए। .....यह बोध निरन्तर बनाते रहिए कि मैं अपनी प्रत्येक आती-जाती साँस का अनुभव कर रहा हूँ। .....सावचेत श्वसन-क्रिया! .....बोध रखिए कि आती हुई श्वास का आनन्द ले रहा हूँ और भीतर में मुस्करा रहा हूँ। .....जाती हुई श्वासों का अनुभव कर रहा हूँ और अन्तर्मन को शांतिमय बना रहा हूँ।

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार भरे पड़े हैं, हम सब लोगों के चित्त में। भोगों के, विकारों के, तनावों के। .....पहले साँसों का अनुभव कर रहा था, अब अपने अन्तर्मन और दिमाग का सचेतन अनुभव कर रहा हूँ। .....पूर्ण सचेतनता। .....अन्तर्मन को सहज शांतिमय बना रहा हूँ। .....पूर्ण आत्मभाव लिए हुए अपने अन्तर्मन को सहज शांतिमय बनाते रहिए।

चित्त में यदि भटकाव लग रहा हो तो शांत गहरी साँसों का अनुभव करने लगें। साँस को 'स्लो एंड डीप' धीमी और गहरी करते रहें। .....हर विचार एक तरंग है। विचारों के साथ 'इन्वोल्व' न हों। ....क्षण-क्षण यह धारणा रखिए कि मैं स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ। .....मैं अपने आन्तरिक अस्तित्व को जान रहा हूँ, अनुभव और अनुपश्यना कर रहा हूँ। .....अपने-अपने वास्तविक सत्य का अनुभव करते रहें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं स्वयं को शांतिमय और ज्ञानमय बना रहा हूँ। .....मन और प्राणों की गहराई में उतारकर स्वयं का अनुभव कर रहा हूँ। .....चेतना के असाधारण स्वरूप का ध्यान कर रहा हूँ। .....स्वयं को आनन्दमय और समाधिमय बना रहा हूँ। .....स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ .....समाधिमय बना रहा हूँ। प्रज्ञामय बना रहा हूँ..... आत्ममय और आनन्दमय बना रहा हूँ।

सोहम्! हे प्रभु! मुझे अपनी कृपा का पात्र बनाओ कि मैं स्वयं को समाधिमय बना सकूँ, सत्यमय और आनन्दमय बना सकूँ।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचेतनता में छिपी है शांति की साधना

एक छोटी-सी कहानी निवेदन कर रहा हूँ। कुछ ग्रहण करने की ललक हो तो छोटी-सी कहानी या घटना से भी ज्ञान की कोई-न-कोई किरण सहज प्राप्त की जा सकती है। यह कहानी साधना के, शान्ति के मर्म को जीने और समझने के लिए प्रकाश की किरण का काम कर सकती है।

कहानी है राजकुमार श्रोण के जीवन से जुड़ी हुई। श्रोण संत बन चुका है। एक दफा वह आहारचर्या के लिए निकला। रास्ते में चलते-चलते वह सोचने लगा- 'बहुत तेज गर्मी पड़ रही है, पाँव जल रहे हैं, सिर तप रहा है। मैं आहार के लिए निकला हूँ, मगर अभी तक आहार कहीं नहीं मिला है।' न जाने श्रोण अपने विचारों में आहारचर्या के बारे में क्या-क्या सोचता जा रहा है और सड़क पर नंगे पाँव चलता चला जा रहा है।

अचानक वह देखता है कि सामने से एक महिला आई है और उसने आकर कहा है, 'भन्ते! मेरी मालकिन ने आपको भोजन के लिए आमंत्रित किया है।' श्रोण प्रसन्न हुआ कि आहार के लिए ज्यादा भटकना न पड़ा। मैं सोच ही रहा था कि कोई ढंग का घर मिल जाए, तो भोजन ग्रहण कर तृप्त हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाऊँ। अच्छा हुआ कोई मुझे न्यौता देने आ गया।

संत श्रोण उस महिला के घर चला गया। जैसे ही भीतर पहुँचा, मन में आया, 'भोजन जितना जल्दी मिल जाए, उतना अच्छा।' तभी गृहस्वामिनी ने उससे कहा, 'आइए भन्ते! आपके लिए भोजन तैयार है। ग्रहण करने की कृपा कीजिए।'

श्रोण जब भोजन करके तृप्त हो गया, तो तभी मन में नया विचार उठने लगा। विचारधाराओं का अन्तहीन सिलसिला होता है पर यह ध्यान रखिएगा कि कोई भी विचार अपना विचार नहीं होता। हर विचार एक धारा है, मन के सरोवर की एक लहर भर हुआ करता है। लहर का अनुसरण करोगे तो लहर बहाकर ले जाएगी और लहर के केवल साक्षी रहोगे तो लहर उठेगी और आगे बह जाएगी, तुम वहीं के वहीं स्थिरचित्त रहने में सफल हो जाओगे। लहर के साथ बह गए तो वह बहा कर ले जाएगी पर अगर किनारे पर खड़े रहे तो लहर आगे बढ़ जाती है मगर तुम किनारे के बरगद हो जाते हो। लहरों का उठना मन की प्रकृति है। लहरों का गुजरना भी मन की एक प्रवृत्ति है, लेकिन अपने में स्थिरचित्त होना, स्थितप्रज्ञ होना, अपनी अन्तरआत्मा में अपने चित्त को स्थिर बनाए रखना ही सक्षित्व का ध्यान और ध्यान का सक्षित्व है।

संत श्रोण भोजन करते-करते ही सोच रहा है खाना तो बड़ा अच्छा खिलाया इस गृहिणी ने। अब थोड़ा आराम करने को मिल जाए तो बड़ा अच्छा हो। श्रोण अभी तक ऐसा सोच ही रहा था कि मालकिन आई और आकर कहने लगी, 'भन्ते! आपके लिए शैय्या तैयार है। पधारिए और विश्राम कर लीजिए।'

उसे सन्देह हुआ, यह महिला कहीं मेरे भीतर की तरंग को पकड़ तो नहीं रही है! पर फिर लगा कि हो सकता है मेरे मन का ऐसे ही बहम हो। आखिर हर आदमी को खाना खाने के बाद तो सोने को चाहिए ही। इसने भी ऐसे ही सहज में कह दिया होगा और सोने के लिए जैसे ही भाव उठने लगे तो जब पलंग की तरफ बढ़ने लगा तो वहाँ पर चटाई बिछाई हुई थी उस चटाई को देखकर उसके मन में भाव उठने लगे— आज संत बन गया सो चटाई पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोना पड़ेगा, अगर मैं राजमहलों में होता तो मखमल के बिछौनों पर सोता।

वह इस तरह के विचार कर ही रहा था कि तभी उस गृहिणी ने कहा, भन्ते, आपका पलंग ऊपर वाला है।' श्रोण यह सुनकर चौंक पड़ा। वास्तव में वहाँ तो मखमली गलीचे के बिछौने लगे हुए थे। वह सो गया। सोये-सोये फिर विचार उठने लगे- 'घर में होता तो सेविकाएँ पंखे बींजतीं। अब संत-जीवन में तो ठीक है....। श्रोण इस तरह की उधेड़बुन में चल रहा है कि तभी उसने देखा दो सेविकाएँ उसके ईर्द-गिर्द आ चुकी हैं और पंखा बींजने लग गई हैं। तभी उसके मन में नया विचार उठने लगा कि खाना तो डट के खाया हुआ है, थोड़ा-सा ठण्डा-ठण्डा पानी पीने को मिल जाए तो तृप्ति आ जाए।

तभी देखा कि गृहस्वामिनी के संकेत पर एक सेविका आई और कहने लगी, 'भन्ते! शीतल जल स्वीकार कीजिए।' इस स्थिति को देखकर श्रोण अचंभित हो उठा। वह पानी पी न सका। उसका हाथ काँपने लगा। वह झट से उठ खड़ा हुआ। सोचने लगा कि ज़रूर यह महिला मेरे विचारों को पढ़ने में समर्थ है। मेरे मन में और किसी तरह का विचार उठे, उससे पहले मुझे यहाँ से निकल जाना चाहिए, वरना यह अपना मन....! कब किससे मानसिक बलात्कार कर बैठे! मन सबका प्राइवेट होता है। कौन आदमी अपने मन में कब-किस तरीक़े के विचारों से घिर जाता है कोई पता नहीं चलता। बैठा होता है पत्नी के पास, मगर सोच रहा होता है अपनी प्रेमिका के बारे में।

अब आदमी का पता थोड़े ही है कि यह कब किस विचारधारा में बह पड़े। श्रोण उठा और झट से वहाँ से रवाना हो गया। गृहस्वामिनी ने कहा, 'भन्ते! थोड़ी देर तो और विश्राम करते।' पर वह कुछ बोल न पाया, उससे कुछ ज़वाब देते न बन पाया। वह तो भागा। भगवान के पास पहुँचकर उसने विश्राम लिया, शांति पाई। उसे लगा, चलो अच्छा हुआ मैं पहुँच गया। वहाँ रहता तो वह कुछ और पढ़ लेती। अतीत में राजकुमार था। पलंग पर सोया था तो सोये-सोये और भी आगे विचार उठ आते।

श्रोण आ गया था वास्तव में मूर्च्छागत अचेत अवस्था में। जब तक व्यक्ति अपने भीतर मूर्च्छित और अचेत रहेगा तब तक उसके मन की यही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणतियाँ उसके साथ चलती रहेंगी। अस्सी साल के हो जाओगे तब भी और मृत्यु के द्वार पर पहुँच जाओगे तब भी।

मृत्यु के द्वार पर पहुँचकर भी तुम यही कहोगे अपनी पत्नी से कि बड़ा बेटा कहाँ है। पत्नी कहेगी- चिंता मत करो आपके सिरहाने है। बोले, 'छुटका कहाँ है?' ज़वाब मिला, आपके पास ही तो बैठा है! तो तब मूर्च्छित और अचेत अवस्था में जीने वाला व्यक्ति मरणशय्या पर पड़ा हुआ भी यही कहेगा कि अगर तीनों यहाँ हैं तो दुकान को कौन चला रहा है?

ये अचेत अवस्था के परिणाम हैं। यह घटना मैं इसलिए कह रहा हूँ ताकि हम सब लोग अपनी-अपनी मूर्च्छा और अचेत अवस्थाओं को समझें और अपने प्रति जागृति/सचेतनता ला सकें। हम, किसी को गाली न देनी पड़े यह सचेतनता तो रखते हैं लेकिन भीतर में गाली का उदय ही न हो, 'ध्यान' हमें वह सचेतनता देता है। तब, जब मनुष्य अपनी सचेतनता को खंडित कर बैठता है, उसकी हालत श्रोण जैसी होती है।

कहते हैं श्रोण अगले दिन फिर आहारचर्या के लिए निकलने लगा। अपने गुरु के पास गया और जाकर कहने लगा, 'भन्ते, आहार के लिए जाने की अनुमति चाहता हूँ।' गुरु ने कहा, 'अनुमति है, किन्तु आज भी वहीं पर जाना है जहाँ कल गए थे।'

उसने कहा, 'भगवन्! उपवास करना मंजूर है, मगर उस महिला के घर भोजन के लिए जाना दुष्कर है।' भगवान ने कहा, 'वत्स, अचेत-अवस्था के साथ जब-जब जाओगे तब-तब तुम्हारी यही परिणति होगी। आज तुम पूरी सचेत-अवस्था के साथ जाओ। अपनी श्वसन-धारा और विचारधाराओं के प्रति सचेत-जागृत होकर जाओ। तुम केवल आती-जाती श्वास-धारा पर ध्यान धरते हुए जाओ। केवल श्वास-धारा का आनंद लेते जाओ। अपनी प्रत्येक श्वास का अनुभव करते रहो। उसी का आनंद लेते रहो। तुम औरों से स्वतः निरपेक्ष होते जाओगे।'

श्रोण गुरु को इंकार न कर पाया। वह भारी मन से निकल पड़ा। धीमी चाल से चल रहा था। श्वसन-धारा का अनुभव करते हुए चल रहा था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्वसन-धारा का ध्यान करते हुए चलता चला जा रहा था। उसने गुरुवाणी को ध्यान में रखते हुए संकल्प लिया कि हर हालत में सचेत रहूँगा। श्वासधारा का अनुभव करते हुए वह अनुभव कर रहा था कि मैं सचेत हो रहा हूँ..... मैं सचेतन हूँ। मैं शांतिमय और आनंदमय हूँ। अब मैं औरों के साथ भी सचेतनता से ही पेश आऊँगा।

धैर्यपूर्वक वह श्वसन-धारा का अनुभव करते हुए उस महिला के घर पर पहुँचा, आहार भी लिया, वहाँ से वापस लौटकर भी आ गया और गुरु के पास आकर उसने यह मार्ग देने के लिए साधुवाद दिया। उसे लगा, 'गुरु ने सचेतनता का गुर देकर उसे मन की सौ-सौ मुसीबतों से मुक्त होने का अमृत मार्ग दे दिया।'

आज वह सहज है। उसे शांति का, स्थिरचित्त रहने का मार्ग मिल गया है। उसे लगा सचेतनता का मार्ग ही आनंद और मुक्ति का मार्ग है। 'सचेतनता'— साधना का एक अकेला मंत्र है। साधना के मंदिर का पहला सोपान सचेतनता ही है।

यदि सहजता सुख और शांति का द्वार है तो सचेतनता संबोधि और मुक्ति का द्वार है। सचेतनता हमें संसार से संन्यास की ओर ले जाती है। सचेतनता हमें बोधि और संबोधि की ओर ले जाती है। सचेतनता यानी हर कार्य को होश और बोधपूर्वक करना। सचेतनता यानी सावधानी। अपने प्रत्येक कार्य को, प्रत्येक व्यवहार को, प्रत्येक शब्द को, प्रत्येक कदम को, प्रत्येक श्वास को सचेतनता से लीजिए। 'श्वास-साधना' के प्रयोग में हम अपनी आती-जाती प्रत्येक श्वास पर ध्यान धरते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों ने ही सचेतन प्राणायाम पर जोर दिया है। पतंजलि सचेतन प्राणायाम को ध्यान और समाधि का पहला आधारसूत्र मानते हैं।

श्वास हम जितनी शांत, मंद और गहरी लेंगे, सचेतनता हमारी उतनी ही गहरी होगी। अनुभव करते हुए गहरी साँस लेना, अनुभव करते हुए गहरी साँस छोड़ना, दो साँसों के बीच रहने वाले गेप का, स्पेस का, अवकाश का अनुभव करना - यही है सचेतन प्राणायाय। इसे 'आनापान सती' भी कहते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। यानी आत्मस्मृति के साथ आती-जाती साँस का अनुभव करना, उसकी प्रेक्षा और अनुपश्यना करना।

हर समय हमारी साँस एक मिनट में करीब पन्द्रह चलती है, पर सचेतन प्राणायाम का अभ्यास सधता जाए, तो यही एक मिनट में 8-10 तक पहुँच जाएगा। हाथी एक मिनट में मात्र 10 साँस ही लेता है जबकि उसका शरीर इतना भीमकाय होता है। हाथी सौ साल जीता है, इसके पीछे एक कारण उसका मंद-गहरी सांस लेना भी है। कहते हैं, कछुआ एक मिनट में करीब 5-6 साँस ही लेता है। यही कारण है कि कछुआ मनुष्य और हाथी से भी अधिक उम्र पाता है। आप भी साँसों को साधें। शांत-मंद साँसों को साधें।

ध्यान का यदि आपको अन्य कोई विधि-प्रयोग नहीं आता, तब भी आप केवल एक ही बोध को, एक ही संकल्प को अपने साथ जोड़ लें और वह यह कि मैं सचेतन प्राणायाम करूँगा। साँस की डोर के सहारे, साँस के सूक्ष्म मार्ग के सहारे आप अपने सूक्ष्म मानस में प्रवेश पाने में सफल हो जाएँगे। पहले दो-चार दिन यह प्रयोग 10-10 मिनट तक करें। धीरे-धीरे स्वत: इसमें समय की बढ़ोतरी हो जाएगी।

कुल मिलाकर एक ही मंत्र साधना का, संबोधि-साधना का, शांति की साधना का अपना लीजिए और वह है सचेतनता। ध्यान में बैठो, तो साँसों के प्रति, शरीर के प्रति, शरीर के सुखद-दु:खद संवेदनों के प्रति, विचारधाराओं के प्रति सचेतनता साधें और जब ध्यान से उठ जाएँ, तो अपने प्रत्येक कर्म को सचेतनता से साधें। स्वाभाविक है कि सेविंग करते वक्त आखिर ब्लेड का कट तभी लगता है जब आप अपनी सचेतनता, अपना ध्यान चूक जाते हैं। खाना खाते वक्त गाल दाँतों के बीच तभी आता है जब आप सचेतनता रखनी भूल जाते हैं। निश्चय ही सचेत अवस्था में किया गया कार्य पूर्ण होता है, वहीं अचेत अवस्था में किया गया कार्य गलतियों का शिकार होता ही है। खाओ-पिओ, उठो-बैठो, बोलो-बतलाओ - हर काम में एक ही मंत्र को साधिए - सचेतनता।

सचेतनता यानी एक काम एक मन। खाना खाओ तो ध्यान से खाओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब कुछ और मत सोचो। यही व्यक्ति की सचेतनता को साधने का गुरुमंत्र होगा। तो मौनपूर्वक भोजन करने की आदत डाल लो और उस दौरान पूरी तरह सचेत होकर भोजन ग्रहण करो। पूरी प्रसन्नता से भोजन करें। एक-एक कौर का आनंद लेते हुए भोजन करें। उखड़े मन से, उचटे मन से, तनावग्रस्त मन से भोजन न करें। जिस मनोदशा से भोजन ग्रहण करेंगे, भोजन भी आपको वैसा ही परिणाम देगा। यहाँ तक कि महिलाएँ अगर भोजन बनाएँ और अपने घरवालों को भोजन भी परोसें, तो इतने स्वस्थ-सचेत-प्रसन्न भाव से कि वह भोजन सकारात्मक परिणाम दे सके।

लोग मेहमान के घर पर आने पर सामने तो कहते हैं कि बड़ी कृपा हुई, आप पधारे। आपके आने से हमारा हृदय बाग-बाग हो गया। वहीं रसोई-घर में जाकर जब उनके लिए खाना परोसते हैं तो मन-ही-मन सोचते रहते हैं कि 'घरवालों के लिए तो खाना बनता नहीं, ऊपर से इन बिन बुलाए जवाइयों को और जिमाओ।' अब आप बताइये कि जब इस तरह की अधजली भावनाओं के साथ आप किसी का आतिथ्य करेंगे, तो आपके हाथ से खाए भोजन का सामने वाले के मन पर कैसा असर पड़ेगा?

जब भी खिलाएँ मन से खिलाएँ, आनंद-भाव से खिलाएँ। जिस घर में घर आए मेहमानों का आतिथ्य आनंद-भाव से होता है, अरे, उस घर की तो धूल भी माथे से लगाओ तो वह किसी मंदिर की माटी की तरह पवित्र और पुण्यदायी होती है। बोझिल मन के साथ खाना खिलाने की बजाय तो न खिलाना, या न खाना ज्यादा श्रेष्ठ है। यदि आपके घर के बाहर बोर्ड लिखा हुआ हो- 'कुत्तों से सावधान', तो कृपया उस स्थान पर लिखिए— स्वागतम्/ अतिथि देवो भव:। जहाँ, जिस घर में आतिथ्य-सत्कार का आनंद लिया जाता है, वहाँ नौ ग्रह अपने आप अनुकूल हो जाते हैं। उस घर का दारिद्र्य स्वत: दूर होने लगता है।

सचेतनता की साधना हमें सिखाती है कि व्यक्ति बोधपूर्वक खाए, होशपूर्वक खाए। और तो और, यदि झाड़ू भी लगाएँ तो इतनी सचेतनता से कि वह स्वच्छता मंदिर का आंगन बन जाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब चलें तो चलते समय भी सचेतनता से चलें। अच्छा होगा, सुबह जब आप योग करते हुए कदमताल करते हैं तो एक-एक कदमताल को पूरी सजगता-तन्मयता से करें। ध्यान की ही एक प्रकिया है- चलते हुए ध्यान करना। इसके लिए आप संबोधि-धाम की छतों का, या अपने घर की बड़ी छत का उपयोग कर सकते हैं। चाँदनी रात में छत पर शांत-मंद चाल से टहलें और अपने प्रत्येक उठते-रखते कदम का बोध रखें। आपके लिए कदमों का उठना-रखना भी साँसों के आवागमन के ध्यान जैसा हो जाएगा।

और तो और, सचेतनता की साधना करने से क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे कषाय और विकार भी स्वत: कम होने लग जाएँगे। क्रोध हमेशा अचेत अवस्था में ही पैदा होता है। सचेत व्यक्ति स्वत: नियंत्रित रहता है। क्रोध अनियंत्रित होने का प्रतीक है। क्रोध और सचेतनता— दो में से कोई एक रहता है। क्रोध है तो सचेतनता नहीं, सचेतनता है तो क्रोध नहीं। सचेतनता तो खुद ही योग है। योग मुक्ति की ओर ले जाता है। योग हमें कषायों के घेरे में नहीं उलझाता। कषाय रोग है। योग रोग का नाशक है। योग हमें आत्मभाव से जोड़ता है और आत्मवान् व्यक्ति आक्रोश नहीं करता।

आइए, हम सचेतनता को साधें। आधे घंटे एक ही आसन में, एक ही मुद्रा में बैठ सकें, इस स्थिति में खुद को कर लें। शरीर को प्रमाद-रहित करें। सहज सौम्य भाव से सीधी कमर बैंठें। मन में यह संकल्प ग्रहण करें कि मैं स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ। जब-जब आवश्यक लगे अपने संकल्प को दोहरा लें कि मैं स्वयं को शांतिमय बना रहा हूँ। बस, इसी मानसिकता के साथ अपनी साँस-धारा पर ध्यान धरें। साँसों का कुछ देर तक अखंड अनुभव करते रहें। चित्त जब-जब अस्त-व्यस्त होने लगे क्रमश: बीस-तीस-चालीस गहरी साँस लें। विश्वास रखिए ध्यान कल्पवृक्ष के समान है। ध्यान की सुखद छाँव में मन की सारी उधेड़बुन, मन की कामनाएँ स्वत: शांत-तृप्त होने लग जाएँगी। धैर्यपूर्वक ध्यान धरने से घंटों-घंटों का, कई दिनों का और कई दफा वर्षों वर्ष का निषेधात्मक चिंतन निरस्त हो जाता है। आप समझें कि मैं किसी हिमालय की गुफा में या किसी बोधिवृक्ष के नीचे बैठा हूँ। धैर्यपूर्वक स्वयं से, अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपसे मुलाकात कर रहा हूँ। बस, आपकी यह मानसिकता, आपकी यह सचेतनता ही धीरे-धीरे आपकी बोधि की ओर, संबोधि की ओर, शांति की ओर, दिव्यता और प्रभुता की ओर ले जाती चली जाएगी।

आज इतना ही अनुरोध है। आइए, अब हम सचेतनता की साधना हेतु ध्यान में उतरें, ध्यान में खुद को तन्मय करें, श्वास-धारा के साथ स्वयं को एकलय करें।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान से जानिए स्वयं को

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इस बात का फैसला होना चाहिए कि वह अपने जीवन में शांति चाहता है या सफलता। शांति का मार्ग अन्ततः व्यक्ति को सफलता के शिखर की ओर ले ही जाता है, पर सफलता के रास्ते पर जाने वाले को अन्ततः शांति की ही शरण में आना पड़ता है।

सफलता मूल्यवान् है, पर शांति सफलता से भी अधिक मूल्यवान है। सच्चाई तो यह है कि शांति स्वयं ही अपने आप में सबसे बड़ी सफलता है। शांति के लिए जीवन में सहजता चाहिए और मुक्ति के लिए सचेतनता। साधना के लिए सचेतनता ही सफलता की कुंजी है। सचेतनता यानी मन, वचन, काया की हर गतिविधि के प्रति सचेतनता।

जब हम ध्यान में उतरते हैं तो सम्पूर्णतः अपने आपके प्रति सचेत/सावचेत/आत्मजागृत होते हैं। हालांकि शुरू में किसी के लिए भी स्वयं को शांत, मौन, निर्विकार भाव से बैठ कर अपने प्रति सचेतन होना एक कठिन काम लगता है। पर जब हम एक-एक घड़ी, दो-दो घड़ी बैठकर अपनी साँसों के प्रति सचेत होने लगते हैं, लयबद्ध होने लगते हैं, तो व्यक्ति अनायास अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपसे रूबरू होने लगता है।

यों तो प्रत्येक व्यक्ति यह भलीभाँति जानता है कि वह कौन है, यहाँ कहाँ से आया है और वापस यहाँ से कहाँ लौट कर जाएगा। व्यक्ति जानता है कि वह अमुक पिता का पुत्र है, अमुक शहर से यहाँ तक आया है और यहाँ कुछ दिन प्रवास करके वापस अपने उसी शहर को लौट जाना है। अपने परिचय के नाम पर हर किसी आदमी के पास ऐसा ही कोई न कोई छोटा-मोटा परिचय हुआ करता है।

लेकिन व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह पिता और पुत्र के परिचय से भिन्न वास्तव में कौन है? वह यह भी नहीं जानता कि माँ के गर्भ में वो कहाँ से आया? और वह यह भी नहीं जानता कि वह मरणोपरान्त यहाँ से किस दिशा, विदिशा या गति की ओर जाएगा।

सामान्य रूप में व्यक्ति पिता और पुत्र, पति और पत्नी के परिचय तक ही अपने आप को सीमित रखता है। लेकिन ज्ञान और ध्यान का उदय होने पर प्रत्येक व्यक्ति यह भलीभाँति जान लेता है कि सारे संबंध एक संयोग भर हैं। वह भलीभाँति जान लेता है कि अपनी माँ के गर्भ में वह कहाँ से आया है और शरीर का त्याग करने के बाद वह यहाँ से कहाँ जाएगा।

हर व्यक्ति एक अज्ञात लोक से पृथ्वी-ग्रह पर आता है। पृथ्वी ग्रह पर कुछ दिन तक प्रवास करके वह वापस उसी अज्ञात लोक की ओर लौट जाता है। वह एक प्रकाशपूरित लोक से आया है और वापस उसी प्रकाशपूरित लोक की ओर लौट जाता है। पृथ्वी-ग्रह पर तो वह केवल अमुक समय से अमुक समय तक प्रवास करता है। कुछ फूल खिलाता है और पुनः लौट जाता है। इस आत्म-बोध को ही जीवन-का-ज्ञान कहते हैं। ज्ञान गति देता है, ध्यान स्थिति देता है, ध्यान से ही वास्तविक ज्ञान का जन्म होता है। इस ज्ञान से ही व्यक्ति जीवन का सत्य जानता है।

व्यक्ति सत्य को जान सकता है किसी ज्ञानी गुरु की वाणी को सुनकर। वह जान सकता है किसी धर्म-शास्त्र को पढ़कर। वह जान सकता है ध्यान के द्वारा अपने में उतरकर, अपने आपसे रूबरू होकर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरु की वाणी को सुनकर जाना गया सत्य सत्य का आभास है। धर्म-शास्त्र को पढ़कर जाना गया सत्य 'शब्द-सत्य' है पर अपने-आप में उतरकर या आत्म-स्थित होकर जाना गया सत्य परम सत्य और पूर्ण सत्य है।

संबोधि-साधना का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप से रूबरू करवाता है। इसलिए संबोधि-साधना और कुछ नहीं, केवल अपने साथ अपना साक्षात्कार है, होश और बोधपूर्वक अपने साथ की जाने वाली मुलाकात है।

'संबोधि' शब्द हमें भीतर का होश देता है। जब हम पलकों को झुकाकर अपनी मन:स्थिति को अपने में स्थिर करने लगते हैं, तो यह संबोधि शब्द हमें अपने प्रति होश और बोधपूर्ण बनने के लिए प्रेरित करता है। संबोधि की धारणा लिए हुए ध्यान में उतरना शांति और पवित्रता की तरफ बढ़ने वाला पहला कदम साबित होता है। साक्षीभाव से, बोध-दृष्टि से, एकाग्रता से ध्यान की शुरुआत होती है और स्वयं की भीतरी शांत स्थिति में होने वाली आनंददशा, ज्ञानदशा और मुक्तदशा में ध्यान की बैठक की पूर्णाहुति होती है।

हमें ध्यान की बैठक की शुरुआत प्रवेश के तौर पर आधे घंटे से करनी है। ध्यान में हम श्वास के आवागमन पर ध्यान देते हैं। उस पर अपने होश और बोध को, सचेतनता को कायम करने लगते हैं, साधने लगते हैं। श्वास का अनुभव करते हुए हमें चित्त की अस्थिरता का सामना करना पड़ता है, पर ध्यान की सचेतन मानसिकता के चलते धीरे-धीरे हम उस पर विजय प्राप्त करते चले जाते हैं। धीरे-धीरे हम पाते हैं कि हम शांत हैं, स्थिर हैं, बोधपूर्ण हैं।

ध्यान 'एकत्व' में स्वयं का प्रवेश है। व्यक्ति धरती पर अकेला आता है, अकेला जाता है। बीच की व्यवस्थाएँ तो संयोग-संबंध हैं। ध्यान में हमें अकेले ही प्रवेश करना होता है। बाहर के हर तादात्म्य को ढीला करना होता है। यहाँ तक कि शरीर का तादात्म्य भी, विचारों का तादात्म्य भी ध्यान में बाधक है। ध्यान तो हमें कमल बनाता है- आत्म-कमल। सबके बीच, फिर भी सबसे मुक्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुनिया में यों तो गुरु और शिष्य का संबंध होता है, माता और पुत्र का संबंध होता है पर ध्यान के द्वार पर कदम रखने वाले व्यक्ति के लिए तुम्हीं तुम्हारे गुरु होते हो और तुम्हीं तुम्हारे शिष्य होते हो। तुम्हीं तुम्हारे प्रेमी होते हो और तुम्हीं तुम्हारे मित्र होते हो। सहजात्म स्वरूप परमगुरु। आत्मा के सहज-स्वरूप के प्रति होने वाली सचेतनता ही व्यक्ति का गुरु होता है। ध्यान में हर संबंध शिथिल हो जाता है, तुम्हीं केवल शेष रहते हो।

ध्यान की अन्तर्यात्रा करते समय तो प्रेमी को भी बाहर रखना पड़ता है और प्रेमिका को भी बाहर रखना पड़ता है। दोनों में से अगर किसी एक को भी अन्दर लेकर चले गए तो ध्यान ध्यान नहीं होता। वो ध्यान भी भीतर का जंजाल भर हो जाएगा। तुम यादों और कल्पनाओं की अनलिमिट यात्रा पर निकल पड़ोगे।

इसलिए ध्यान तो 'इनकमिंग' का रास्ता है, 'आउटगोइंग' का नहीं। अगर किसी की याद को अपने में लेकर भीतर प्रवेश करोगे, तो आउटगोइंग, बहिर्यात्रा शुरू हो जाएगी, जबकि ध्यान भीतर की यात्रा है, अन्तर्यात्रा है। अपने में अपना प्रवेश, अपने में अपनी स्थिति - इसी का नाम ध्यान है।

जब हम भीतर में प्रवेश करते हैं, तो हमें सबसे पहले अपने भटकाऊ मन का सामना करना पड़ता है। मन की चंचलता का उस वक्त अधिक अहसास होता है जब हम एकांत में बैठकर ध्यान करने को तत्पर होते हैं। सामान्य तौर पर भी मन तो हर वक्त भ्रमणशील ही रहता है, पर हम बाहर की गतिविधियों को सम्पादित करते रहते हैं, कभी कुछ बोलते रहते हैं, कभी कुछ सुनते रहते हैं, कभी खाते रहते हैं, कभी कुछ देखते रहते हैं, सो मन की धारा उसके साथ तादात्म्य बनाती रहती है। ध्यान में मन की चंचलता का इसलिए अहसास होने लगता है क्योंकि उस समय हम इन्द्रियों की बहिर्यात्रा पर विराम लगा देते हैं। न कुछ बोलते हैं, न खाते हैं, न देखते हैं, न सुनते हैं। उस समय तो हम भीतर-बाहर से मौन होने को कृतसंकल्प होते हैं।

जैसे ही हम इन्द्रियों को विराम देते हुए अपने में प्रवेश करते हैं, तो कुछ क्षण में ही हमें मन के ऊहापोह का सामना करने को मिलता है। मन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांतिमय करने के लिए हमें थोड़ा-सा धैर्य धारण करना होगा। अपने आप में मन को लगाना होगा। ध्यान में बैठने के उद्देश्य को याद रखिए और साँसों-साँस पर पुनः पुनः स्वयं को स्थिर कीजिए। देह के प्रति, संबंधों के प्रति रहने वाली ममत्वबुद्धि का त्याग करके आत्म-स्मृतिपूर्वक स्वयं में स्वयं को स्थिर करें। पहले क्रियायोग करें अर्थात् सचेतन प्राणायाम करें। जैसे ही लगे कि मन भटका, पुनः 10-12 गहरे श्वास लें। अपनी ओर से लगातार श्वास को धीमी... धीमी... धीमी और गहरी करते जाएँ। प्रभु का, आत्म-भाव का स्मरण करते हुए साँसों का अनुभव करें। साक्षी-भाव को साधें। 20-30 मिनट तक यह सचेतनता बनाएँ। जैसे ही सचेतनता बननी शुरू होती है, ध्यान स्वतः एकलय होने लग जाता है।

महावीर ने एक शब्द दिया है — पिंडस्थ ध्यान और बुद्ध ने शब्द-प्रयोग किया है— कायानुपश्यना। अगर लगे कि चित्त में सीधे ही शांति और स्थिरता नहीं बन पा रही है, तो अपने देहपिंड का ध्यान धरें, उसकी संवेदनाओं पर, भीतर में बह रही प्राणधारा पर ध्यान धरें। यह बोध रखें कि मैं देह में उतरकर देह-पिंड का ध्यान धर रहा हूँ और अपनी काया को शांतिमय बना रहा हूँ।

अभी तक तो हमें काया से तब-तब ही शांति और आनंद मिला, जब-जब पति-पत्नी आपस में मिले या जिस वस्तु का हमें उपभोग करना है, उस वस्तु का उपभोग करने को मिला। जबकि यह निमित्तप्रधान शांति है, क्षणिक शांति है। सच्ची शांति तब है जब उद्वेग-संवेग हमें व्यथित न करें।

इसलिए मैंने कहा था कि ध्यान करना तो टी. वी. देखने की तरह है कि जैसे टी. वी. को देखना हो तो जब जो चैनल चलाओगे तब वो वैसे दृश्य, वैसे विचार, वैसे स्वरूप उभर कर आयेंगे। उसी तरह मन में भी परमात्मा के नाम का चैनल चलाओगे तो परमात्मा से जुड़ी हुई भावदशा उभरकर आयेगी। अपनी अन्तर्आत्मा से जुड़ा हुआ चैनल चलाओगे तो उससे जुड़े हुए भाव, उससे जुड़े हुए अनुभव, तरंगें उभर कर आएँगी और काया की शांति और अन्तर्मन की शांति से जुड़ा हुआ उपक्रम करोगे तो उनमें एक गहरा रिलेक्सेशन,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक गहरी ताज़गी, एक गहरी शांतिमय स्थिति अपने साथ आनी शुरू होगी।

इसलिए संबोधि-साधना अपने प्राथमिक चरण में अपने तन-मन को शांतिमय बनाने का अनुष्ठान है। यह जीवन का एक यज्ञ है, जिसमें हमें अपने-आप की आहुति देनी पड़ती है। इस यज्ञ में घी की आहुति नहीं डाली जाती, तुम्हें अपनी ही उत्तेजनाएँ, अपना ही क्रोध, आवेग, अपने ही भीतर चलने वाली खटपटों की आहुति देनी पड़ती है।

मुक्त होना होता है, मन के घेरों से मुक्त होना होता है। मुक्त किसी और से थोड़े ही होना है। पत्नी से मुक्त नहीं होना, पत्नी के प्रति होने वाले वासना के घेरों से मुक्त होना है। एक फेरे तो आपने शादी की थी तब खाये थे, वे फेरे थे जबकि मैं घेरों की बात कर रहा हूँ। वे घेरे जिनके कारण हम मोह-माया में, राग-द्वेष में, दुनियादारी की आसक्तियों में उलझे हुए रहते हैं। हमें उन घेरों से मुक्त होना है।

प्रश्न है क्या आपको मुक्ति चाहिए? कभी अपने-आप से पूछिए कि मुक्त कौन होगा? मुक्ति किससे होगी? जिन-जिन संबंधों में हमने अपने मन को उलझा रखा है उन उलझावों से मुक्ति पानी होगी। इसलिए प्रत्येक साधक धैर्यपूर्वक अपने-आप में देखे कि कौन-से संबंध उसे बनाये रखने हैं और कौन-से संबंध ऐसे हैं जिन्हें त्याग देना है।

जिन संबंधों की आत्यन्तिक अनिवार्यता हो उन संबंधों को तो बरकरार रखिए बाकी अनावश्यक ढोये जा रहे संबंधों से अपने आप को निर्लिप्त कीजिए। न किसी से दोस्ती, न किसी से बैर। आईने की तरह अपने आप को बना लें। तुम आए तो हम मुस्कुराए। तुम चले गए तो आईना वापस साफ का साफ हो जाए।

हम मुस्करा रहे हैं क्योंकि अपनी मस्ती है। हम मुस्करा रहे हैं आपको देखकर, पर वो मुस्कराना भी कैसा मुस्कराना, जो किसी के चले जाने के बाद आँसुओं का बिछौना बन जाए।

जीवन की वीणा को साधने के लिए ही तो व्यक्ति को मुस्कान देनी चाहिए; मुस्कान लेनी चहिए। निमित्त को पाकर ही मत मुस्कराओ। तुम तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुलाब के फूल बनो और सहज अपने आनंद में मुस्कराते रहो। जन्म है तो भी वैसे ही, मृत्यु है तब भी वैसे ही। कोई मर जाए तो दो आँसू ज़रूर ढुलकाना, पर उसे याद कर-करके उसकी याद में आर्तध्यान और रौद्रध्यान मत करते रहना।

काया आखिर सबकी मरणधर्मा है सो जो मरणधर्मा थी वो मर गई। काया के मरने के बाद जो जीवितधर्मा था वह अब भी जीवितधर्मा है। वह किसी अज्ञातलोक की यात्रा पर चल चुका है। दोनों वहीं के वही हैं। केवल दोनों के बीच रहने वाला संयोग-संबंध बिखर गया।

एक मुट्ठी रेत, अगर किसी के हाथ में हो तो बँधी हुई मुट्ठी होने के कारण वो रेत पूरे हाथ में होती है, पर अगर मुट्ठी खुल जाए तो रेत चारों तरफ बिखर जाती है। आदमी का जाना तो मुट्ठी खोलने की तरह ही है।

जो मूर्ख होते हैं वे मरे हुए को याद कर-करके खुदको मुवा बना लेते हैं। जो ज्ञानी होते हैं, ध्यान के मार्ग पर जीने वाले होते हैं वे जानते हैं कि मरणधर्मा आखिर अपने धर्म को अपना लेता है। ऐसे लोग जान लिया करते हैं अपने गुणधर्मों को भी और औरों के गुणधर्मों को भी।

ध्यान जानना है। लोग स्कूल जाते हैं पढ़ने के लिए, कुछ जानने के लिए, विश्व भर की सूचनाओं को एकत्रित करने। ध्यान-शिविर भी एक पाठशाला है। इसमें भी हम पाठ पढ़ते हैं पर वे पाठ किताबों के नहीं होते। इसमें हम अपनी ही किताब को पढ़ते हैं। किसी और की लिखी हुई किताब को नहीं पढ़ते; अपनी ही लिखी हुई किताब को पढ़ते हैं। जो भी है, जैसी भी है। अतीत में संजोए गए संस्कारों को पढ़ते हैं। चित्त की धाराओं को पढ़ते हैं। चित्त की धाराओं के प्रति सजगता साधते हैं। अपने साथ अपनी सचेतनता साधते हैं। सचेतनता खण्डित हो जाए तो फिर साधेंगे। फिर खण्डित हो जायेगी, तो फिर साधेंगे। बिना सचेतनता के ध्यान नहीं सधता और बिना ध्यान के जीवन में गहराई नहीं आती।

सचेतनता को, ध्यान को साधना तो प्राइमरी स्कूल पास करने की तरह है। जब आपने किताब पढ़ी थी पहले दिन, पहला चेप्टर पढ़ा था तो क्या पढ़ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही याद हो गया था? फिर-फिर पढ़ा। टीचर को पूछा, फिर समझा, फिर याद किया। फिर-फिर भूलते गये, फिर-फिर रिवाइज़ करते गए और अन्त में जब एक दिन परीक्षा आई, तो जो रिवाइज़ करता रहा वह तो पास हो गया, बाकी सब परीक्षा-परिणाम देकर वापस उसी कक्षा में लौटा दिये गए।

ध्यान के मार्ग में भी 'प्रेप' और 'यूकेजी', पहली-दूसरी कक्षा पढ़नी होती है। ए-बी-सी-डी आने के बाद तो बारहखड़ी सीधी-सरल है। जब तक गुर हाथ न लगे, तभी तक राह कठिन है। धैर्य धरो और मन लगाकर ध्यान धरो, तो ध्यान हमें स्वतः अपने आत्म-सत्य से जोड़ देता है।

अपने-आप को जानने वाला व्यक्ति, ज्ञानपूर्वक जीया करता है, ध्यान पूर्वक, बोधपूर्वक जीवन जीया करता है। मेरी बात को सकारात्मक लेते हुए मान लीजिए कि आप एक नारी हैं। आप एक पत्नी हैं और ध्यान के मार्ग पर चलने के कारण आपने जान लिया कि देह के धर्म क्या हैं और आपकी चेतना के गुणधर्म क्या हैं? आप रात को सो गए। आपका पति आया। वह आपके साथ सोना चाहता है। पति अपनी भड़ास निकालना चाहता है। आप इसके प्रति रुचिशील नहीं हैं, पर पति आपको छोड़ेगा नहीं। पुरुष में जब भड़ास उठने लगती है तो वह एक छिपा हुआ सांड बन जाता है। सांड की भड़ास निकल जाए तो वह ठंडा हो जाता है, न निकले तो वह सींग मारने लग जाता है। ऐसी स्थिति में मान लो तुम्हारे सामने मजबूरी बन चुकी हो। पर याद रखो ध्यानी हर हाल में ध्यानी ही रहता है। सचेत हर हाल में सचेत ही रहता है।

तुम्हारे पति के द्वारा निकाली जाने वाली भड़ास के बावजूद तुम अपनी मुक्ति साध लोगे। तुम देखोगे कि तुम्हारी काया अलग पड़ी है और तुम अपनी काया से अलग हो। तुम जान ही लोगे कि काया को देना तुम्हारी मजबूरी हो सकती है, पर अपने आप को देना तुम्हारी मजबूरी नहीं हो सकती है। तुम्हें निश्चय ही अपने पति पर दया आने लगेगी। तुम्हें लगेगा यह पति नहीं, एक कमजोर इंसान है, जो अपने मन का गुलाम है। तब तुम उन क्षणों में भी भेद-विज्ञान को साध लोगे। देह के प्रति स्वतः अनासक्ति फलीभूत हो जाएगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ही यदि पिता हम पर गुस्सा करें तो हम उन पर नियंत्रण तो नहीं कर सकते, पर क्रोध के उन क्षणों में भी हम अपने-आप को शान्त तो रख सकते हैं।

ध्यान का मार्ग हमें यह बोध देता रहेगा कि क्रोध करना उनकी मज़बूरी है, आपकी मज़बूरी नहीं है। पर अगर क्रोध के उन क्षणों में आप भी क्रोध करने को तत्पर हो गए, तो मानकर चलना कि उन-उन क्षणों में अज्ञान आप पर हावी हो गया। उद्वेग आप पर सवार हो गया। चित्त के संस्कार आप पर हावी हो गए और उन-उन क्षणों में आप हार खा बैठे।

कहते हैं एक दिन च्वांगत्से एक मरघट के पास से गुजर रहा था। अचानक उसका पैर एक खोपड़ी से टकरा गया। उसने खोपड़ी को उठाया और क्षमायाचना करके उसे घर ले आया। उसे जब भी कोई गाली देता, अपमान करता तो वह उस खोपड़ी की तरफ देखता और हँसने लगता।

लोगों ने पूछा, तुम यह क्या कर रहे हो? च्वांगत्से जवाब देता, समय का ही थोड़ा-सा फासला है, बाकी तो आज नहीं तो कल मेरी भी खोपड़ी किसी मरघट में पड़ी होगी और तब यदि कोई लात मारेगा, तो मैं कुछ नहीं कर सकूँगा। फिर आज भी कुछ करने का क्या अर्थ है? बस, यह सोचकर ही मुझे हँसी आ जाती है।

यह है जीत की बाजी! तुम भी जितेन्द्रिय बनो। जीतने वाले बनो। हार भी जाएँ तो कोई चिन्ता नहीं। हार हार कर भी जीतने की सजगता, जीतने की सचेतनता, जीतने की अवेयरनेस अपने साथ जोड़े हुए रखें। हारना कोई गुनाह नहीं है, सभी हारे हुए हैं। महावीर और बुद्ध भी कभी हारे थे। शिव-शंकर भी कभी हारे थे। राम और कृष्ण भी कभी हारे थे। ऋषभदेव भी कभी हारे थे। तो हम भी हार बैठें, तो इसमें कोई गुनाह या आश्चर्य की बात नहीं है। जीतने का आत्मविश्वास, जीतने की तमन्ना होने के कारण आखिर वो जीत ही गए थे। अगर हम लोग भी जीतने की मानसिकता, जीतने की सचेतनता अपने भीतर बरकरार रखेंगे तो आज नहीं तो कल जीत ही जाएँगे। मैंने कहा, हारना कोई गुनाह नहीं है, हारे हुए तो हैं ही। क्रोध करना बुरा नहीं है, क्रोधी तो हैं ही; अभिमान करना बुरा नहीं है अभिमानी तो हैं ही। पर अगर हम हार-हार कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी जीतने की सजगता और सचेतनता बनाए रखेंगे तो मेरे देखे आदमी धीरे-धीरे अपने भीतर के घेरों से मुक्त होता जाता है।

मुक्त किसी और से नहीं होना है हमें। अपने आप से ही हमें मुक्त होना है। मुझे मुझसे ही मुक्त होना है। हमारे भीतर व्याप्त जो घेरे हैं, संस्कारों के, चित्त की प्रकृतियों के, वृत्तियों के, हमें जन्म-जन्मान्तर के उन घेरों से ही मुक्त होना है।

मुक्ति मरने के बाद नहीं मिलती। वो केवल सांत्वना है। वे कहते हैं कि मरने के बाद मुक्ति मिलती है। मुक्ति वो है जिसका रसास्वादन तुम खुद करते हो, जीते जी करते हो। अपने हर पल, अपने आगे-पीछे, इर्द-गिर्द अनुभव करते हो। मुक्ति का वह रसास्वादन तभी होगा जब हम अपने घेरों से मुक्त होंगे।

हम अपने-अपने घेरों को समझें। किसी के भीतर क्रोध का घेरा होगा, तो किसी के भीतर वासना का। कोई मोह के घेरे में जकड़ा है, तो कोई अहंकार के घेरे में। सबके अपने-अपने घेरे हैं, अपनी-अपनी मज़बूरियाँ हैं। ये घेरे ही हमारी आन्तरिक लेश्याएँ हैं। आप अपने घेरों को समझें, और मुक्त होने का प्रबन्ध करें।

कहते हैं : महारानी अहिल्याबाई की स्तुति में किसी विद्वान पंडित ने एक महाकाव्य की रचना की। इस ग्रन्थ में रानी के महान व्यक्तित्व और कृतित्व की यशोगाथा गाई गई। जब पंडित ने उस महाकाव्य को रानी के समक्ष राजदरबार को सुनाया तो जनसामान्य काव्य सुनकर वाह-वाह कर उठा।

अहिल्याबाई ने काव्य सुनकर अपने मन को पढ़ा और कहा, 'पंडित जी! मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ। यदि आप मेरी जगह प्रभु की स्तुति में यह महाकाव्य रचते तो वह अमर हो जाता। उससे रचने वाले का और सुनने वाले का— दोनों का कल्याण होता।'

कहते हैं, तब रानी ने पंडित को तो इस परिश्रम के लिए पुरस्कार दिया, पर मन में अहंभाव का विस्तार न हो जाए यह सोचकर उन्होंने उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाकाव्य को नर्मदा नदी में विसर्जित करवा दिया।

बड़ी अद्‌भुत बात है यह। भीतर के घेरों से मुक्त होने के लिए हमें भी नर्मदा में अपने आग्रहों, आक्रोशों को विसर्जित करना होगा। ध्यान तभी सफल-सार्थक होगा। इसलिए हम स्वयं को इन घेरों से, मन की खटपट से मुक्त करें।

मेरे साधक भाइयो, मेरी प्यारी बहिनो, अगर ध्यान के दौरान भी आपको अपने भीतर खटपट महसूस होने लगे तो निराश न हों। तत्काल अपना चैनल बदल लें। .....खटपट हो सकती है। आपके टी. वी. में भी चलते-चलते खराबी आ सकती है। रिमोट कंट्रोल इसीलिए है। अपनी मानसिक धाराओं को बदलिए। जब-जब भी लगे, चैनल बदलना है, ॐ के साथ 10-20 गहरी साँस लीजिए। पुनः साँसों को धीमे...धीमे...धीमे करते जाइए। स्वतः शांति आने लगेगी। श्वास को सूक्ष्म करते जाएँ, स्वतः मन एकाग्र होने लगेगा। अन्तर्मुखी होने की शक्ति जागृत होगी। आप स्वयं को ज्ञानमय और प्रज्ञामय पाएँगे। शांतिमय और सहज आनंदमय पाएँगे। इससे मन की शुद्धि प्रारम्भ होने लगेगी। राग-द्वेष आदि विकार कम होने लगेंगे। आपकी आत्मक्षमता और दक्षता स्वतः बढ़ती जाएगी। आप स्वयं को आत्मवान्/चैतन्यवान् पाएँगे।

जब-जब हम अपने प्रति सकारात्मक नज़रिया, सकारात्मक दृष्टिकोण रखकर ध्यान में उतरेंगे, तब-तब अपने आप को स्थिरचित्त करेंगे। शरीर प्रतिमा की तरह स्थिर हो, वाणी मौन हो, मन शांत हो, तब-तब ध्यान गहरा होता है। जब हम अपने मन, वचन, कायाँ के व्यापारों को रोक कर स्थिरचित्त होते हैं तो हमारी आत्मा आत्मरत हो जाती है, चेतना चैतन्य-भाव में स्थित हो जाती है।

ज्यों-ज्यों सचेतनता सधती जायेगी, अपने साथ अपना आत्मभाव जुड़ता जाएगा। व्यक्ति अपनी आत्म-चेतना का, आत्मज्ञान का सहज मालिक बनता चला जाएगा। स्वयं के चित्त के शांत होने पर स्वयं के भीतर जिस शून्य का, जिस जीवनी-शक्ति का अनुभव होता है, जिस प्राण-शक्ति का अनुभव होता है, वही तुम हो, वहीं तुम्हारा अस्तित्व है और उसको जानने का नाम ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मज्ञान है।

ऐसा मैं अपने भीतर देखता हूँ। अगर आप लोग भी अपने साथ सचेतनता के लगातार अवसर उपस्थित करते चले जाएँ तो आप अपने साथ भी वैसा ही अनुभव करने लगेंगे।

ध्यान के प्रथम चरण में हमने श्वासोश्वास पर ध्यान साधा है। फिर हमने सम्पूर्ण देह-पिंड पर, उसमें प्रवहमान प्राणधारा और उसकी संवेदनाओं पर ध्यान धरा है। अब हम इस देह-पिंड में कुछ विशिष्ट केन्द्रों पर ध्यान धर रहे हैं। नाभि, हृदय और मस्तिष्क- शरीर के ये तीन महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। नाभि धरातल है, पृथ्वीतल है, हृदय वायुमंडल है और मस्तिष्क आकाशीय क्षेत्र है, मुक्ति का धाम है। नाभि शरीर का तल है, हृदय प्राणों का तल है, मस्तिष्क ज्ञान-विज्ञान और आनंद का तल है। देह से विदेह-भाव में स्थित होना सिद्धक्षेत्र में विहार है। आत्म-भाव लिये हुए हम एक-एक तल पर एक-एक केन्द्र पर क्रमशः ध्यान धरेंगे। अपने चित्त को, जीवनधारा को केन्द्रित करेंगे। निश्चय ही इससे हम अपनी आध्यात्मिक स्वस्थता, आध्यात्मिक शांति, आध्यात्मिक ज्ञान के मालिक बनेंगे।

नाभि हमारे अस्तित्व का मूल केन्द्र है। जन्म का, पोषण का यह आधार है और सम्पूर्ण शरीर का नाड़ीतन्त्र नाभि-केन्द्र से ही जुड़ा हुआ है। माँ के गर्भ में जब हम होते हैं तो हमारा संबंध नाभि से ही होता है। जब बच्चे का जन्म होता है तो नाल बाहर से काट दी जाती है।

जीवन का एक मर्म समझ लें कि नाल बाहर से काटी जाती है लेकिन भीतर का सारा संबंध तब भी बरकरार रहता है। जिन नाड़ीतन्त्रों से भीतर पोषण मिलता है वो नाड़ीतन्त्र जब तक सशरीर रहोगे, तब तक सम्पूर्ण नाडीतन्त्र वैसा ही सुरक्षित रहेगा। इसलिए नाड़ीतन्त्र नाभितन्त्र के इस मूल पर ध्यान देना अस्तित्व के मूल केन्द्र पर ध्यान धरने की तरह हुआ। यह हमारा स्वास्थ्यकेन्द्र है। इससे आप स्वास्थ्य और आरोग्य को भी उपलब्ध होंगे।

मैं सारी दुनिया को यह संदेश देना चाहूँगा कि दुनिया के हर अस्पताल में दस मिनट का ध्यान का प्रयोग अवश्यमेव हो और वो ध्यान का प्रयोग नाभि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के भीतरी प्रदेश में ध्यान धरने का हो। निश्चित तौर पर व्यक्ति के रोग कटेंगे, व्यक्ति निरामय होगा, आरोग्यमय होगा। हमारी मानसिक शक्ति जब नाभि पर सचेतन और स्थिर होगी तो सम्पूर्ण शरीर को अपनी चैतन्य-ऊर्जा प्रदान करेगी। निश्चय ही, सकारात्मक परिणाम आयेंगे। घुटने दुखे कि कमर दुखे कि माथा दुखे, आप नाभि के मूल में, भीतर में ध्यान धरें, वहाँ की सचेतनता आपके शरीर को सकारात्मक परिणाम देगी।

दूसरा तल हृदय है। जीवन की सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति का मूल केन्द्र व्यक्ति का हृदय ही होता है। यहीं से ही रक्त का प्रवाह चलता है। जीवनी-शक्ति यहाँ व्याप्त है। इसलिए हृदय व्यक्ति की चेतना का क्षेत्र है। हृदय पर ध्यान धरने से व्यक्ति को उसकी चेतना का ज्ञान होता है। हृदय में ध्यान धरने से अन्तर्मन में शांतिमय स्थिति बनती है। और यह ऊपर का प्रदेश, मस्तिष्क का क्षेत्र अपने शरीर का सर्वोच्च केन्द्र है, जहाँ पर कि व्यक्ति का मन, बुद्धि और आत्मा के अनंत प्रदेश, चेतना की सर्वोच्च शक्ति इस ऊपरी तल में व्याप्त होती है।

हमारी सबसे प्रमुख चार इन्द्रियाँ इस ऊपरी तन में ही हैं। आँख, नाक, कान, मुख ये चार इंद्रियाँ इसी तल पर हैं। शरीर का दस प्रतिशत भाग ठुड्डी से माथे तक है। मगर शरीर का सबसे इंपोरटेंट पार्ट इसी दस प्रतिशत में ही समाया हुआ है। अर्थात् नब्बे टका माल ठुड्डी से माथे तक और बाकी का दस प्रतिशत माल गले से पाँव तक।

मस्तिष्क व्यक्ति का ज्ञानक्षेत्र और विचारक्षेत्र है। मस्तिष्क ही मन, बुद्धि और भावों का क्षेत्र है। यहाँ अन्तर्मन के क्षेत्र में सचेतनता को साधना, यहाँ बुद्धि रूपी गुफा में ध्यान धरना अपने आप में अपने आत्म-प्रदेश, अपनी जीवनी शक्ति और ज्ञान-प्रदेशों पर ही ध्यान धरना है। शरीर की नब्बे प्रतिशत गतिविधियाँ यहीं से निर्दिष्ट और संचालित होती हैं। जब-जब व्यक्ति अपने ज्ञान-प्रदेशों पर ध्यान धरता है, तब-तब जीवनी-शक्ति से, आत्मशक्ति से रूबरू होता है। चित्त की शांत स्थिति में हम अपने चैतन्यतत्त्व से एकाकार होते हैं। और तब हम हमारे भीतर की असाधारण उच्च आत्म-क्षमताओं के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाग्रत होने के कारण जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों और क्रोध-मान-माया के घेरों को तोड़ने में, उनसे उपरत होने में सफल होने लगते हैं। अर्थात् ज्यों-ज्यों चिराग जलेगा त्यों-त्यों अंधकार छँटेगा।

अंधेरों को हटाने से अंधेरा नहीं हटता। भीतर में सहजता, सचेतनता और सकारात्मकता का प्रकाश जागृत होने पर नकारात्मकताओं के अंधेरे अपने आप छँट जाया करते हैं। उन्हीं क्षणों में अनुभव हुआ करता है - मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, जीवन का मूल स्रोत क्या है? मेरी गति, प्रगति और मुक्ति का रहस्य क्या है? अनेक साधकों को इस दशा में अनुभव हुआ है - सोहम्/ शिवोहम्।

अरिहंते शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
अप्पं शरण गच्छामि।

हम, अपने आप पर विजय प्राप्त करने वाले अरिहंत प्रभु की शरण स्वीकार करते हैं। जीवन को सन्मार्ग प्रदान करने वाले धर्म की शरण स्वीकार करते हैं और जीवन को आधार देने वाले आत्म-तत्त्व की शरण स्वीकार करते हैं। आत्मभाव लिये हुए आइये अब हम धैर्य और शांतिपूर्वक ध्यान में प्रवेश करते हैं।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुसरण कीजिए आनंददायी धर्म का

साधना-शिविर का आज समापन सत्र है। सात दिन तक आप सभी महानुभावों का यहाँ पर प्रवास रहा। न जाने कौन किस दिशा, नगर या प्रदेश से यहाँ पर साधना करने के लिए पहुँचा है।

अलग-अलग नगरों से आने के बावज़ूद एक परिवार के भाव के साथ आप सभी लोग यहाँ पर हिल मिल कर रहे। सुविधाएँ मिलने के बावज़ूद कई तरह की असुविधाओं का भी सामना करना पड़ा होगा, लेकिन इसके बावज़ूद आप लोगों ने मन, वचन और काया से स्वयं को साधना के लिए, स्वयं की शांति के लिए, स्वयं के वास्तविक आनन्द और अन्तस्-चेतना से रूबरू होने के लिए समर्पित किए।

आज के दौर में साधक कहाँ मिलते हैं, लेकिन इसके बावज़ूद आप लोगों ने अपने-आप को साधना के लिए आत्मार्थ भाव से समर्पित किया इसके लिए मैं आप सभी साधक भाई-बहनों का प्रेमपूर्वक अभिवादन, अभिनन्दन और आत्मनमन समर्पित करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी साधक की साधना के लिए जितनी भूमिका किसी गुरु की होती है उससे कहीं ज्यादा भूमिका आदमी की स्वयं की हुआ करती है। अपने स्वयं की लगन, स्वयं की जिज्ञासा तथा स्वयं की तत्परता साधक की साधना को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं। ज्यों-ज्यों साधक लगन के साथ अपनी साधना करता चला जाता है, त्यों-त्यों वह अपने साध्य की तरफ बढ़ता चला जाता है।

यदि व्यक्ति अपनी साधना के साथ धैर्य और शांति का सम्बल बनाए हुए रखे और अप्रमाद और सचेतनता की दृष्टि का उपयोग करता रहे तो निश्चित तौर पर उसमें गहराई आनी ही आनी है।

संभव है अगर किसी साधक को लगता हो कि मनोयोगपूर्वक ध्यान करने के लिए बैठने के बावज़ूद उसके भीतर गहराई न बन पाई। तो संभव है इसके पीछे हमारे किसी अंतराय ने बाधक का काम किया हो। किन्तु जिस व्यक्ति ने जीवन का यह मर्म समझ लिया है कि अगर परमात्मा को पाना है तो उसे मीरा बनना होगा और अगर मुक्ति को साधना है तो महावीर और बुद्ध होना होगा। जब तक कोई भी साधक अपने-आप को उस दहलीज़ तक ले जाने के लिए तत्पर न होगा, तब तक व्यक्ति, व्यक्ति रहेगा। तब तक वह साधना के मार्ग पर चलता रहेगा, लेकिन साध्य का अर्जन तो तभी हो सकता है जब कोई भक्ति के रास्ते पर चल कर मीरा बने या साधना के रास्ते पर चलकर महावीर या बुद्ध बने।

याद रखिए धर्म की शुरुआत जब-जब भी होगी, आदमी के अपने जीवन से ही होगी। जब तक व्यक्ति किताबों का धर्म करता रहेगा तब तक वह किसी और धर्म का अनुसरण करता रहेगा, पर जब व्यक्ति धर्म को अपने जीवन के साथ जोड़ने की कोशिश करेगा, तो धर्म की सच्ची शुरुआत व्यक्ति के अपने जीवन से ही होगी।

हजारों हजार लोग कोई विष्णु भगवान के अनुयायी होकर वैष्णव बने हुए हैं, कोई महावीर के अनुयायी होकर जैन बने हुए हैं। पर मैं यह प्रेमपूर्वक अनुरोध कर देना चाहूँगा कि महावीर ने कभी नहीं कहा कि तुम मेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्त बनो। महावीर ने केवल यही कहा कि तुम स्वयं महावीर बनो। बौद्ध बनने की प्रेरणा बुद्ध नहीं दे सकते। बुद्ध की प्रेरणा तो बुद्ध बनने की ही होगी।

महावीर या बुद्ध का भक्त होना – यह किताबों का अनुसरण हुआ और स्वयं महावीर और बुद्ध होना – यह जीवन में धर्म का सर्वोदय हुआ। बेहतर तो यह होगा कि व्यक्ति धैर्यपूर्वक यह देखे कि अब तक तो वह किसी किताब के द्वारा कहे गए धर्म का अनुसरण करता रहा, पर अब वह धैर्य और शांतिपूर्वक यह सोचे कि मेरे जीवन का धर्म क्या है?

जैसे पानी का धर्म शीतलता है, आग का धर्म ऊष्णता है। ऐसे ही आदमी सोचे कि आदमी का धर्म क्या है? अगर जल का धर्म शीतलता है तो आदमी का भी स्वभावगत धर्म अवश्य होगा। जिस दिन आपमें से कोई भी व्यक्ति इस बिन्दु पर सोचना शुरू कर देगा, उसी दिन से जीवन में वास्तविक धर्म की शुरुआत हो जाएगी।

ओढ़ा हुआ धर्म, आरोपित धर्म, बाहर से भीतर की ओर ले जाया गया धर्म बाहर का धर्म है, भीतर का धर्म प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को आत्म-चिंतन करना होगा कि तुम्हारा धर्म क्या है?

जब तक व्यक्ति यह न सोचे, जब तक तुम्हारे पास इस तरह की समझ न आए तब तक अवश्यमेव किताबों के धर्म का अनुसरण करते रहना, पंथ और परम्परा का अनुसरण करते रहना, पर जिस दिन यह सोचने के लिए प्रेरित हो जाओ, तब तुम्हारे जीवन में वास्तविक धर्म का जन्म होगा। तब वो धर्म किसी और का न होगा, तब वो धर्म तुम्हारी अन्तर्आत्मा का धर्म होगा।

अपने द्वारा अगर सोचने के लिए बैठ गए और अगर तुम्हारी अन्तर्आत्मा ने तुमसे कह दिया कि क्रोध करना धर्म है तो तुम क्रोध का अनुसरण करो। किताबों ने अगर कहा है कि क्रोध करना बुरा है तो किसी का क्रोध नहीं छूटा, मान नहीं छूटा, माया-लोभ नहीं छूटे इसलिए क्योंकि हम बाहर के धर्म, किताबों के धर्म में ज्यादा आस्था रखने लग गए।

प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविक धर्म को प्राप्त करने के लिए यह सोचना चाहिए कि इंसान होकर इंसान का धर्म क्या है? इस बारे में सोचना ही जीवन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का धार्मिक और आध्यात्मिक चिंतन है।

अभी तो कहना पड़ता है कि ये करो और वो मत करो पर जीवन में धर्म को जोड़ने वाला, जीवन के पाठों को पढ़कर धर्म की शुरुआत करने वाला व्यक्ति जो कुछ करेगा वह धर्म का ही आचरण होगा क्योंकि वो कभी गलत कर ही न पाएगा। वो जो भी करेगा सही ही करेगा। किसी की भी अन्तर्आत्मा किसी को भी गलत सलाह और प्रेरणा नहीं देती।

मैं धार्मिक हूँ, मेरी पलकें झपकती हैं तो भी उसमें धर्म की आभा होती है और अगर मेरी जिह्वा खुलती है तो उसमें भी धर्म का माधुर्य होता है। मैंने उस धर्म का भी आचरण किया है जो धर्म में लिखा है, मैंने उसे भी समझा है और उसके क्या परिणाम हो सकते हैं, उसको भी समझा है। जब-जब मैंने यह सोचा मैं जिस धर्म का आचरण कर रहा हूँ वो तो किसी किताब की लिखी हुई पंक्ति है। क्या मैं उसी पंक्ति को आचरित करने के लिए पैदा हुआ हूँ? मेरा धर्म क्या है? मेरा स्वरूप क्या है? मेरी इच्छाएँ क्या हैं? मेरा लक्ष्य क्या है? मैं अपने द्वारा किन परिणामों को प्राप्त करना चाहता हूँ? मेरे जीवन की धन्यता किसमें है? मुझमें भी कभी ये जिज्ञासाएँ जन्मी हैं। आप भी सोचें, सोच-सोचकर सोचें। आपकी आत्मा खुद आपको रास्ता देगी। ज्ञान के द्वार खोलेगी। जीवन को सहजता से जिया जाए, सचेतनता से जिया जाए, सकारात्मकता से जिया जाए, निर्लिप्तता से जिया जाए। यह दृष्टिकोण भीतर की प्रेरणा से प्राप्त हुआ धर्म है। लोग चिंता करते हैं, मैं कहूँगा आप चिंतन करें। चिंतन रास्ता देता है। हर विज्ञापन, हर आविष्कार के पीछे चिंतन की पहली भूमिका होती है।

किताबों ने स्वर्ग की बातें कही हैं, किताबों ने नरक की बातें कही हैं; अच्छी बात है। पर मैं यह अनुरोध करना चाहूँगा उस नरक से भयभीत मत होना जो नरक किसी पाताल में बना हुआ है और उस स्वर्ग को पाने के लिए भी हाथ-पाँव मत चलाते रहना जो किसी आकाश में बना है।

सद्धर्म का मार्ग हमें यह प्रेरणा देता है कि सबके भीतर नरक की आग सुलग रही है। क्रोध की, काम की, विकार की, मान की, राग-द्वेष की। इस नरक से बचोगे तो पाताल में बने हुए नरक से भी बच जाओगे। अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीतर स्वर्ग को ईजाद करो, प्रेम लाओ, शांति लाओ, आनंद लाओ, अपनी ओर से औरों को हमेशा सुख, शांति और सुकून दो। जीवन में सदा शांति, संतोष और सौम्यता रखो, तुम हर हाल में स्वर्ग के पथिक रहोगे।

हम जब-जब, जितनी-जितनी देर भी अपने भीतर यह आनंदित दशा बनाए हुए रखेंगे, उतनी-उतनी देर हमारे साथ स्वर्ग होगा, स्वर्ग का आनन्द होगा। याद रखें जिनके लिए वर्तमान स्वर्ग है उनके लिए आकाश में भी स्वर्ग है। जिनके भीतर नरक है, उनके लिए पाताल में भी नरक है। जिनके भीतर स्वर्ग है उनके लिए पाताल में भी स्वर्ग ही है।

धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा इन सब बातों को अपने आंतरिक जीवन के साथ जोड़कर देखें तब स्वत: यह समझ में आने लग जाएगा कि मेरा वास्तविक धर्म क्या है, मेरी साधना क्या है और मैं अपनी साधना से क्या परिणाम प्राप्त करना चाहता हूँ।

धर्म न हिन्दु बौद्ध है,
धर्म न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्त की शुद्धता,
धर्म शांति सुख चैन॥

अन्तर्मन की शुद्धता इंसान का पहला धर्म है। जीवन में शांति और सौम्यता रखना व्यक्ति का पहला धर्म है। वह कार्य करना धर्म है जो स्वयं के लिए भी सुखकारी हो और दूसरों के लिए सुखकारी हो। केवल स्वयं के सुख की सोचना तो स्वार्थ है, वहीं औरों के सुख का भी ख़्याल रखना परमार्थ है।

मैंने सुना है: किसी रास्ते पर किसी ने एक बड़ा पत्थर रख दिया। बीच रास्ते पर पत्थर पड़ा था। लोग आते, जाते, कहते भी कि किसने पत्थर सड़क पर रख दिया? पर कोई उसे हटाता नहीं। कई दफा लोग उससे ठोकर भी खा बैठते फिर भी उसे किसी ने हटाया नहीं।

कहते हैं एक दिन फूलों की टोकरी लिए हुए एक माली उधर से गुजरा। वह अपनी मस्ती में चल रहा था। अचानक, उसे उसी पत्थर से ठोकर लगी। वह गिर पड़ा। उसके सारे फूल भी बिखर गए। उसने फूलों को इकट्ठा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया, टोकरी किनारे रखी और लगा उस पत्थर को हटाने। पत्थर भारी था, पर उसे लगा कि जिस पत्थर से उसे ठोकर खानी पड़ी है, कम-से-कम दूसरों को तो उससे ठोकर न लगे। मैं तो निकल जाऊँगा, पर दूसरे...!

उसने पूरी ताक़त लगाकर धीरे-धीरे उस पत्थर को लुढ़काना शुरू किया। पत्थर को हटाने में वह सफल रहा। पर आश्चर्य इस बात का था कि जिस पत्थर को उसने हटाया, उस पत्थर के नीचे एक लिफाफा रखा था, जिस पर लिखा था - यह उपहार उसके लिए है जो दूसरों के लिए हितकारी सोच रखता है। उस लिफ़ाफ़े में दस स्वर्ण मुद्राएँ थीं।

कोई मुझसे पूछे कि धर्म क्या है, तो मैं कहूँगा इस तरह की सोच ही धर्म है। कहते हैं: एक दफा गुरु रामदास और शिवाजी साथ-साथ दक्षिण भारत की ओर जा रहे थे। उनके साथ तीसरा कोई न था। रास्ते में एक नदी आई। उसमें पानी उफान पर था, बहाव भी तेज था। गुरु ने नदी को देखा और शिवाजी से कहा, 'शिवा, नदी को पहले मैं पार करूँगा।' शिवाजी ने कहा, 'नहीं गुरुजी, पहले मैं पार करूँगा, फिर आप।' गुरु और शिष्य में इस बात को लेकर बहस छिड़ पड़ी। आखिर, हारकर गुरु ने शिवाजी को नदी पहले पार करने की रज़ा दे दी।

जब दोनों नदी पार कर गए, तो गुरु जी ने कहा, 'आज पहली बार तुमने मेरी आज्ञा नहीं मानी।' शिवाजी ने कहा, 'मैं आपको अनजानी नदी में पहले कैसे जाने देता। यदि आप बह जाते तो?'

गुरुजी ने कहा, 'और यदि तू बह जाता तो?'

शिवाजी ने ज़वाब दिया, 'गुरुजी, मेरे बह जाने से कोई नुकसान नहीं होता। आप कई शिवा तैयार कर लेते, किन्तु यदि आप बह जाते तो मैं एक समर्थ गुरु से वंचित हो जाता। मेरे जीवन से आपका जीवन देश के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।'

मुझे यह अत्यन्त प्रीतिकर कहानी लगी है। इस तरह की उदात्त सोच में ही धर्म की आत्मा छिपी हुई है। आप जिस परिवार में रहते हैं, वहाँ एक दूसरे के प्रति प्रेम, सम्मान, सरलता और त्याग की भावना रखना आपका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारिवारिक धर्म है। दीन-दुखी की मदद करना सामाजिक धर्म है। अपने मानसिक विकारों पर विजय प्राप्त करना और होश और बोधपूर्वक जीवन को जीना आध्यात्मिक धर्म है। याद रखिए सच्चा संन्यास वेश में नहीं है। सेंटीसनेस इज दा मेंटल सिचुएशन। संन्यास तो एक मानसिक वस्तु है। साधु बनना एक अलग बात है, और जीवन में साधुता रखना अहम बात है। आप जीवन के संत बनें। गृहस्थ में भी शांति और सौम्यता को अपनाकर स्वयं को साधु और संत बना लें। वेश बदलकर संत बनने वाले तो ढेर सारे हैं, जरूरत है ऐसे लोगों की, ऐसे बोध-पुरुषों की जो जीवन के संत हों।

जीवन में उसी संतता को, उसी साधुता को, उसी बुद्धता को जीने के लिए ही मैंने चार बिन्दुओं को जीवन में जीने की प्रेरणा दी है। इन बिन्दुओं ने मुझे जीवन का प्रकाश और आनंद दिया है अथवा यों समझें कि भीतर के प्रकाश और आनंद ने इन बिन्दुओं को जन्म दिया है। पहला है: सहजता, दूसरा है: सकारात्मकता, तीसरा है: सचेतनता और चौथा है: निर्लिप्तता। पहले दो बिन्दु व्यावहारिक जीवन से जुड़े हुए हैं, अगले दो बिन्दु आध्यात्मिक जीवन से। चारों बिन्दुओं को एक साथ जोड़कर ही जीवन को शांतिमय, सुखमय, आनंदमय और प्रज्ञामय बनाया जा सकता है।

आरोपित जीवन, कृत्रिम जीवन से आप अपने-आप को जितना बचा सकेंगे, आप उतने ही अधिक आप सुखी-स्वस्थ रहेंगे। लोग अपने-आप को बहुत कृत्रिम बना रहे हैं। लोग चेहरे को, मुस्कान को, व्यवहार को, सबको कृत्रिम, आर्टिफिसियल बना बैठे हैं। सहजता, नैसर्गिकता चली गई है। होठ हैं तो होठों पर भी लिपिस्टिक, चेहरा है तो चेहरे पर भी पाउडर, व्यवहार है तो व्यवहार भी कृत्रिम। और मुस्करा रहे हैं तो मुस्कान भी दिखावटी। रिश्ते हैं, तो उन्हें निभाना भी मजबूरी। कोई मर जाए, तो उसमें शरीक होना भी एक सरपच्ची। यानी कुल मिलाकर जीवन की सहजता-सरलता गिरवी रखी जा चुकी है।

जो अपना सहज जीवन जीते हैं वे अपनी सहजता में जान चुके होते हैं कि आदमी को खुली किताब की तरह होना चाहिए। बन्द करो तब भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वही, खोल दो तब भी वही।

आप अपने दिमाग को देखो, वह सहज है या बोझिल? चिंताग्रस्त है या संतुष्ट? अवसादभरा है या शांतिमय? मन विक्षिप्त है या आनंदपूर्ण? निश्चय ही दिमाग में दस किलो का वजन तो ढोया जा सकता है, पर यदि कोई उस पर दस क्विंटल का वज़न ढोने का प्रयास करेगा, तो तय है कि वह वज़न ढोने से पहले ही गिर पड़ेगा। चिंता, तनाव, अवसाद भी एक सीमा तक हों, तो वे ढोये जा सकते हैं, पर अनलिमिट हों, तो अधिक गैस से गुब्बारा फूटेगा ही। आकाश में उड़ते गुब्बारे संतुलित हवा भरने का संकेत देते हैं। असंतुलित हवा भरने से तो पेट भी फूटेगा, गुब्बारा भी फूटेगा।

सहजता का सिद्धांत हमें समझाता है कि जीवन को, जीवन की गतिविधियों को सहजता से करो। अति तनाव में किया गया काम और ध्यान भी निष्फल हो जाते हैं। अपने हर कार्य को सहजता से करो। कपड़े भी सहज पहनो; भोजन भी सहजता से करो। उठो-बैठो भी सहजता से। धर्म-कर्म भी सहजता से करो। ध्यान में भी सहजता को मूल्य दो। यानी कुल मिलाकर एक फैसला कर लो कि जीवन को सहजता से जिएँगे।

सहजता से जुड़ा हुआ दूसरा बिन्दु है सकारात्मकता। आप जीवन के प्रति सकारात्मक रहिए। सम्बन्धों के प्रति सकारात्मक रहिए। कार्यकलाप और बोल-बरताव को सकारात्मकता से कीजिए। अनुकूल वातावरण में तो सकारात्मक रहें ही, विपरीत वातावरण में भी स्वयं को सकारात्मक रखें।

सकारात्मकता यानी पोजिटिवनेस। सकारात्मकता यानी हर हाल में शांति और सौम्यता। सकारात्मकता यानी दूसरों को निभाने की कला। सकारात्मकता अर्थात् सलीब पर चढ़ाने वाले के प्रति भी प्रेम और क्षमा का भाव। सकारात्मकता यानी अच्छा व्यवहार, अच्छा नज़रिया, अच्छा कार्य।

कहते हैं: अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के पास एक दिन आजीवन सजा प्राप्त एक कैदी का पत्र प्राप्त हुआ। यह एक ऐसे कैदी का पत्र था जिसने दस वर्ष अमेरिका की जेल में बिताये। उस कैदी ने दस वर्ष शांति के साथ जेल में बिताने के बाद एक अच्छे नागरिक का जीवन जीने की तमन्ना के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ प्रार्थना-पत्र भेजा था। नियमानुसार प्रार्थना-पत्र के साथ किसी विशिष्ट व्यक्ति या जिम्मेदार व्यक्ति का संस्तुति-पत्र भी साथ में नत्थी होना आवश्यक था। प्रार्थना-पत्र में कैदी ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा का भी उल्लेख किया। पत्र पढ़कर राष्ट्रपति प्रभावित हुए। उन्होंने सजा माफ करने का मानस बना लिया। पर उनके कानूनी सलाहकार ने कहा, 'सर! लेकिन इस सजा प्राप्त कैदी की माफ़ी की सिफ़ारिश किसी ने नहीं की। जबकि नियमानुसार किसी का संस्तुति-पत्र होना आवश्यक है। लगता है सिफारिश के लिए इसका कोई मित्र भी नहीं है।'

राष्ट्रपति की सकारात्मक दृष्टि समझिएगा। राष्ट्रपति ने यह कहते हुए उसकी सजा माफ़ कर दी थी कि जिसका कोई सिफ़ारशी नहीं है उस मित्रविहीन का मैं मित्र बनकर उसकी शेष सजा माफ़ करता हूँ। देश के असहाय नागरिक को भी न्याय मिलना चाहिए, इसलिए उसके भविष्य पर विचार करते हुए उसकी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ।

व्यक्ति की यह उदार दृष्टि ही व्यक्ति की सकारात्मकता है। सकारात्मकता को आप जीवन के माधुर्य का राज समझें। बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी सकारात्मकता आपको पार लगने की शक्ति प्रदान करेगी। जब भी आपको लगे कि घर में, व्यापार में, समाज में कहीं कोई विवाद हो गया है, संघर्ष की या बात बिगड़ने की उम्मीद है, आप तत्काल सकारात्मकता के मंत्र को याद कीजिए। आपकी यह सकारात्मकता आपको धैर्य भी देगी, साहस भी देगी, विचार-क्षमता भी देगी, बुद्धि की ऊँचाई भी देगी। मैं तो कहूँगा कि सकारात्मकता को अपने गाँठ बाँध लें, अपनी आँखों की रोशनी बना लें। यह संकल्प कर लें कि मैं सहज जीवन जीऊँगा और हर हाल में हर कार्य, हर वस्तु, हर व्यक्ति के प्रति सकारात्मक/पोजिटिव रहूँगा।

जीवन को साधनामूलक, ध्यानमूलक स्वरूप देने के लिए अंत में मैं दो बातें पुनः निवेदन कर देता हूँ और वह है सचेतनता और निर्लिप्तता। इनमें से पहली बात है सचेतनता। जीवन की प्रत्येक गतिविधि को सचेतनता के साथ सम्पादित किया जाए तो प्रत्येक कार्य अपने आप में ध्यान हो जाता है। ध्यान में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बैठकर हम सचेतनता को साधते हैं। सचेतनता यानी अवयरनेस, कॉंसियसनेस। अगर हम प्रत्येक कार्य को अवेयरनेस, सचेतनता के साथ सजग होकर सम्पादित करें तो कार्य हमेशा पूर्ण होगा। सचेत होकर अगर आप शेविंग करेंगे तो शेविंग अच्छी होगी। अगर सचेत अवस्था में खाना बनाएँगे तो खाना ढंग से बनेगा। अचेत अवस्था में बनाया गया खाना तो दोषपूर्ण ही होता है।

अभी हाल ही अपनी आत्मीय साधिका विजयलक्ष्मी जी ने खेद और प्रायश्चित-भाव के साथ एक घटना मुझे लिख भेजी है कि वह अपने घर की सफाई कर रही थी। दरवाजे और पर्दे झाड़ रही थी कि तभी उसकी नज़र दरवाज़े के दूसरी तरफ गई। वहाँ लाल रंग, खून जैसा कुछ टपक रहा था। वह उसे देखकर चौंक पड़ी। पास गई तो देखा वह वास्तव में खून ही था। उसने झट से दरवाजा खोला। वह यह देखकर दंग रह गई कि दो मिनट पहले जब उसने कमरे का दरवाज़ा बंद किया था तो एक छिपकली उस बंद होते दरवाज़े की चौखट में आ गई थी। दरवाज़ा खुलते ही खून से भरी छिपकली धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरी। वह मर चुकी थी। वीजे का मन तड़फ उठा। उसे आत्मग्लानि महसूस हुई - अपनी असावधानी पर, एक जीव की हो चुकी हत्या पर। उसे तभी अहसास हुआ काश, मैं सफाई के कार्य को थोड़ा और सजगता से करती!

सजगता, सचेतनता साधना के मार्ग पर तो प्रथम है ही, सांसारिक गतिविधियों को निपटाते समय भी सचेतनता के प्रकाश को अपने हाथों में रखना चाहिए। साधना का आप यह मर्म समझ लें कि अगर अचेत अवस्था में कुछ भी करेंगे तो वो कार्य अपना शुभ परिणाम नहीं देगा पर अगर सचेत अवस्था के साथ कुछ भी करने की कोशिश करेंगे तो वो कार्य पूरा होगा, शुभ होगा, सम्पूर्ण होगा, समग्रता से होगा।

साधक के लिए जो एकमात्र अन्तर-दीप चाहिए, वह है सचेतनता। संतरा भी खाओ, आम भी खाओ तो सचेत होकर खाना, सचेतनता से खाना। अगर अचेत अवस्था में खाते रहे तो सावधान। गाल कभी भी दाँतों के बीच में आ सकते हैं। अचेत अवस्था में खाना बनाया तो हाथ कभी भी जल सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचेत अवस्था में अगर कार भी चलाई तो सावधान! दुर्घटना घट सकती है।

जीवन के प्रत्येक कार्य को सचेतनता से सम्पादित करना संबोधि-साधना की पहली और अन्तिम सिखावन है। यहाँ तक कि बुरे निमित्तों को पाकर कभी क्रोध की दशा भी आ जाए तो अपने क्रोध को भी सचेतनता के साथ व्यक्त करें। जीवन में चाहिए सचेतनता।

बाहर भी सचेतनता चाहिए और भीतर भी सचेतनता चाहिए। बाहर जो-जो कार्य करो उन कार्यों के प्रति सचेतनता चाहिए और भीतर जब ध्यान धरो तो अपनी काया और अपने अन्तर्मन के प्रति सचेतनता चाहिए। जो सचेत होते हैं वे ही साक्षित्व को साध पाते हैं। जो सचेतन होते हैं वे ही अपने भीतर समग्रता के दर्शन कर पाते हैं।

सचेतनता को साधने का एक अकेला मंत्र यही बन सकता है कि जो करो उसे पूरे मन से करो। एक काम, एक मन। ध्यान करो तो केवल ध्यान करो। खाना खाओ तो केवल खाने पर ध्यान हो। खाना खाओ तब बैंक बेलेंस की मत सोचो। अगर आप बैंक में गए हैं, तो वहाँ लेन-देन करते वक्त खाने की मत सोचो।

सचेतनतापूर्वक जीवन के प्रत्येक कार्य को सम्पादित करने का पहला और आखिरी मंत्र है: एक काम एक मन। जो भी करेंगे पूरे मन से करेंगे, नहीं तो नहीं करेंगे। खाते वक़्त अगर बैंक का विचार आ जाए और याद हो ही आए कि 'एक काम एक मन' मैं सचेतनता से खाना खा रहा हूँ, सचेतनता से ही खाऊँगा। जैसे ही बैंक का विचार खाना खाते वक्त आए तो अपने आप से अनुरोध करें कि अभी तो खाना खाऊँ। एक काम एक मन। खाना खा रहा हूँ तब केवल खाना खाऊँगा। यदि यह सचेतनता हम बरकरार रखते हैं तो भोजन करते हुए भी समझो कि ध्यान किया जा रहा है।

कल ही एक प्रिय साधक भाई कह रहे थे कि ऐसा कोई मंत्र बतलाइए कि हंसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्, कि हँसते, खेलते, खाते हुए भी हम ध्यान धर सकें, इसका गुर बताइये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं कहना चाहूँगा, वह मंत्र है सचेतनता। हँसते हुए भी सचेतन रहिए और खाते हुए भी सचेतन; सड़क पर चल रहे हैं तब भी सचेतन रहिए। अगर आप सड़क पर चल रहे हैं और चलते वक्त अगर केवल सड़क पर और अपने पाँव पर ही ध्यान दे रहे हैं तो यह चलना भी अपने आप में ध्यान का एक चरण है।

अगर आप भोजन कर रहे हैं तो प्रेम से भोजन करें, आनंद लेते हुए, प्रत्येक कौर का आनन्द लेते हुए भोजन करें। जब ध्यान धरें तो अपनी प्रत्येक श्वास का आनन्द लें। अन्तर्मन में उठ रही हर लहर का आनंद लें। आप संगीत का आनन्द तो लेते हैं न्। अपनी श्वास-धारा का भी आनंद लें, अपनी श्वसन-क्रिया का भी आनन्द लें। ये जो आती-जाती हुई श्वसन-धारा है उस प्रत्येक धारा का वैसे ही आनन्द लें जैसे कोई सागर के किनारे बैठकर सागर की लहरों का आनन्द लिया करता है। जैसे कि कोई झरोखे में बैठकर रास्तों से गुजर रहे राहगीरों का आनन्द लिया करता है। जब आँख बाहर खुले तो बाहर के प्रति सचेतनता और जब आँख को हम अपने भीतर ले जाते हैं तो अपने प्रति सचेतनता, समग्रता होनी चाहिए। इसकी शुरुआत करने के लिए हम अपने व्यावहारिक जीवन में एक काम शुरू कर दें। सचेतनता को साधने का एक बहुत सीधा सरल-सा तरीका हो सकता।

जैसे ही आप भोजन की थाली पर बैठें, मौन ले लें। मौन लेते ही बाहर की गतिविधियों के प्रति हमारी जो तत्परताएँ हैं, जो चंचलता है, उस पर विराम लग गया, संयम आ चुका है।

मौन लेने के बाद थाली में जो भोजन आया है, आप सहज भाव से उसका एक-एक कौर खाएँ। सचेतनता से सावधानी से चबाएँ, उसका स्वाद लें और सचेतनता से ही उसे ग्रहण करें। भोजन में कोई कमी रह जाए तो प्रतिक्रिया न करें। हो-हल्ला करके भोजन के अवसर को व्यर्थ न करें। उसका भी सचेतनता से अनुभव करें कि सब्जी में जो अधिक खारापन या नमक आया है उसको खाते वक्त आपके चित्त की अवस्थाएँ कैसी बन रही हैं।

अपनी चित्तदशाओं को समझें। आप अपने राग-द्वेष के अनुबंधों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझने में सफल हो सकेंगे। तो पानी पीओ तो सचेतनता से, सड़क पर चलो तो सचेनता से। अचेत अवस्था में अगर चलते रहे, चलते रहे हैं नीचे, नज़र पड़ी किसी फिल्म के पोस्टर पर तो सावधान! हिन्दुस्तान की नगर पालिकाओं की हालत तो आप लोग जानते हैं, कहीं भी गटर खुला हुआ मिल सकता है। आपकी नज़र ऊपर और आप गटर के नीचे। इसीलिए जीवन में चाहिए सचेतन अवस्था। आप सचेतन योग कीजिए, सचेतन प्राणायाम कीजिए, सचेतन ध्यान कीजिए, सचेतन कार्य और प्रार्थना कीजिए। सचेतनता में ही एकाग्रता छिपी है। अब भला वह कैसा प्रसंग, कैसा निमित्त जो हमारे ध्यान को, हमारी सचेतनता को विचलित कर दे।

मैंने सुना है: एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के ध्यान में डूबा उससे मिलने जा रहा था। अचानक वह किसी संत से टकरा गया। संत ईश्वर का ध्यान और स्मरण करते हुए चल रहा था। युवक उस संत से टकरा गया, पर वह चलता रहा। संत ने चिल्लाकर कहा, 'नालायक, मैं ईश्वर के ध्यान में डूबा था, तूने मुझसे टकराकर मेरा ध्यान भंग कर दिया।'

युवक को लगा कि सचमुच उससे गलती हो गई। उसने कहा, 'महाराज, क्षमा करें। मैं किसी और के ध्यान में डूबा था, सो अपनी धुन में आपका ख़्याल न रहा, पर महाराज, टकराया तो मैं भी हूँ, पर आपसे टकराने पर भी मेरा ध्यान तो भंग नहीं हुआ, फिर आप तो संत हैं, आपका ध्यान कैसे भंग हो गया?'

ध्यान की आत्मा है एकाग्रता और एकाग्रता की आत्मा है धुन। धुन लग गई तो चाहे जैसे निमित्त या वातावरण बने, प्रेमी युवक की तरह उस पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

अंतिम बात, सचेतनता से ही जुड़ी हुई चीज है निर्लिप्तता। अर्थात् सबके बीच, सबके साथ रहकर भी उनसे निर्लिप्त रहो। मुक्ति के द्वार इसी से खुलते हैं। लिप्तता तो आसक्ति है और आसक्ति अज्ञान का, बंधन का कारण है। जीवन को जिएँ होश से, बोध से, मुक्तिभाव से, आनंद-भाव से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो निर्लिप्त नहीं हैं, लिप्त हैं वे अपने पोते की एक छोटी-सी बीमारी भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। जो निर्लिप्त हैं वे अपने घर में हो जाने वाली किसी मृत्यु को भी सहजता से ले लिया करते हैं। यह मानते हुए कि देह का गिरना तय है। यह देह चाहे चालीस की उम्र में गिरे या अस्सी की उम्र में, रवि को गिरे या शनि को, किसी-न-किसी एक दिन, एक वार को गिरनी तय है। जो तय है, वह हो गया। बस! नदी, नदी रह गई और नाव किनारे लग गई। नदी-नाव का संयोग टूट गया।

महावीर और बुद्ध ने अनित्यता के बोध पर बहुत जोर दिया है। अर्थात् सब कुछ क्षणभंगुर है। जिसका उदय है, उसका विलय निश्चित है, फिर किसके प्रति राग, किससे द्वेष। हर हाल में सहज। कहते हैं : झेन गुरु निनाकावा जब अपना शरीर छोड़ रहे थे तभी उनके पास आईक्यू नाम से दूसरे झेन गुरु पहुँचे और कहा, 'क्या मैं आपका सहयोगी बन सकता हूँ।' निनाकावा ने जवाब दिया, 'मैं यहाँ अकेला आया हूँ और अकेला ही जाऊँगा। फिर आप मेरी कैसी हैल्प कर सकते हैं?' आईक्यू ने उत्तर दिया, 'यदि आप वास्तव में सोचते हैं कि आप आ और जा रहे हैं, तो यह आपका भ्रम है। मैं आपको वह रास्ता दिखाता हूँ जिस पर न आना है न जाना। 'लेट मी शो यू द पाथ ऑन विथ देयर इज नो कमिंग एंड नो गेट।' मैं वह रास्ता दिखाता हूँ जहाँ न जन्म है, न मत्यु!' निश्चय ही आईक्यू ने उसे वह रास्ता सुझाया कि मृत्यु के क्षणों में भी निनाकावा आनंदित हो उठा। वह मुस्कुराया और चला गया। साधक मृत्यु को ऐसे वरण करे। जब तक जिए तब तक कमलवत् जिए।

हर साधक को अपने भीतर कमल के फूल की स्मृति बनाए रखनी चाहिए कि मैं सबके साथ वैसे ही रहूँ जैसे कि कोई पानी और दलदल में कमल का फूल रहा करता है।

सबके साथ रहो। बच्चे हैं, पोते हैं, पोतियाँ हैं, पत्नी है, पति है, माँ-बाप हैं। सबके साथ हिलमिल कर रहो। पर यह बोध बनाए रखो कि व्यक्ति अकेला आता है और अकेला ही जाता है। आए तो साथ में कुछ न लाए और जाएँगे तब भी कुछ नहीं ले जाएँगे। सब संयोग हैं। यहाँ आप और हम साथ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ हैं यह एक संयोग है। यह संयोग कब तक रहेगा, कहा नहीं जा सकता। यह संयोग वापस कब होगा, यह भी कहना कठिन है। आप पति-पत्नी हैं, यह भी एक संयोग है। मैं किसी पिता का पुत्र बना हूँ यह भी एक संयोग है। कोई व्यक्ति मेरा पिता बना यह भी एक संयोग है।

अगर संयोग को संयोग भर मान लिया जाए तो अपने-आप जीवन में निर्लिप्तता रहेगी। यदि जीवन में निर्लिप्तता रहती है तो व्यक्ति घर में रहकर भी संत बनकर जीता है। संत बनना कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन सबके बीच रहते हुए, सब कुछ करते हुए भी अपने आप को निर्लिप्त रखना यही सच्ची साधना है।

जीवन में अगर कोई प्रतीक याद भी रखना है तो कमल के फूल को याद रखिए। वह सबके साथ होता है, लेकिन फिर भी अपने आप में स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए होता है। वह मुक्त और निर्लिप्त होता है।

कहते हैं: जब कोई सम्राट् अस्वस्थ हो जाता है तो स्थिति यह बन जाती है कि अगर उसके पास में कोई छोटी-सी भी ध्वनि हो जाए तो उसे बर्दाश्त नहीं हो पाती। उसके रोग को ठीक करने के लिए वैद्यराज ने कहा था कि इन पर लाल चंदन घिस कर लगाया जाए तो इनके शरीर का ताप शांत हो सकता है।

कहते हैं कि रानियाँ चंदन घिसने के लिए बैठीं। चंदन घिसने लगीं तो चूड़ियों की खनखनाहट की आवाज आने लगी तो सम्राट् ने कहा, 'यह आवाज़ मुझसे बर्दाशत नहीं होती। रानियों से कहो कि आवाज न करें।'

रानियाँ थोड़ी देर में चंदन घिस लाईं। राजा ने पूछा, 'चंदन क्या तुम्हीं ने घिसा?' रोनियाँ बोलीं, 'हाँ राजन्, हमने ही घिसा है।' सम्राट ने कहा, 'पर पहले चूड़ियों की आवाज़ आ रही थी।' वे बोलीं, 'हमने, चूड़ियाँ उतार दीं जिससे कि आवाज न हो।'

'तो क्या तुमने मेरे जीते जी अपने हाथ की चूड़ियाँ उतार दीं?'

रानियाँ बोलीं, 'राजन्! सौभाग्य के प्रतीक स्वरूप हमने केवल एक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक चूड़ी अपने हाथ में पहनकर रखी। बाकी सारी चूड़ियाँ उतार कर रख दीं। राजन्! आप ही बताइए कि एक अकेली चूड़ी कैसे खनकेगी?'

कहते हैं तब सम्राट् को यह बोध हो जाता है कि एक अकेली चूड़ी कैसे खनकेगी! जिसने अपने भीतर एकत्व के बोध को अर्जित कर लिया, वो व्यक्ति सहज, मुक्त और निर्लिप्त हो जाता है।

शरीर को ढ़ीला छोड़ना फिज़िकल रिलेक्सेशन है। दिमाग की कोशिकाओं को ढीला, तनावमुक्त करना मेंटल रिलेक्सेशन है, पर तन-मन के प्रभावों से उपरत होकर स्वयं को स्वयं के एकत्व-भाव में स्थित और स्थापित करना स्प्रीचुअल रिलेक्सेशन है। एकत्व-भाव में स्थित होना ही आध्यात्मिक मुक्ति है।

सहजता, सकारात्मकता, सचेतनता और निर्लिप्तता— जहाँ इन चार स्तम्भों को आदमी अपने जीवन के साथ जोड़े हुए रखता है, शांति और मुक्ति उसके अगल-बगल रहती है। ठीक वैसे ही जैसे गणपति के अगल-बगल में ऋद्धि-सिद्धि रहा करती है।

साधक भी संसार में जीता है इसलिए यह विवेक बनाए रखें कि मैं जितनी सचेतनता से जीऊँ, उतना ही मैं संसार में रहकर भी संसार से निर्लिप्त रहूँ। निर्लिप्तता किसी भी साधक की साधना की आत्मा बनती है। जब तक लिप्त रहोगे, तब तक उधेड़बुन चलती रहेगी जबकि निर्लिप्त व्यक्ति अपना प्रत्येक कार्य बहुत संयमित नपा-तुला, सब कुछ बोधपूर्वक ही करता है।

अपनी ओर से प्रेमपूर्वक इतना ही अनुरोध है। शिविर भले ही आज समाप्त हो रहा हो, पर आप इन बातों को अपनी प्रेक्टिकल लाइफ के साथ जीने की सजगता रखें। जैसे गर्भवती महिला अपने गर्भ को सुरक्षित सम्हालकर चलती है, ऐसे ही आप इन बातों को अपने में सम्हालकर संजोकर चलें। संबोधि अर्थात् अब मैं प्रत्येक कार्य को होशपूर्वक-बोधपूर्वक करूँगा। ध्यान के प्रयोग और ध्यान की सजगता— दोनों ही आपको गहराई देंगे, शांति देंगे, मुक्ति प्रदान करेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आप सबकी आनंदमयी, ध्यानमयी, मंगलमयी चेतना को मेरे प्रणाम हैं।
सभी सुखी रहें, सदाबहार आनंदित रहें।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

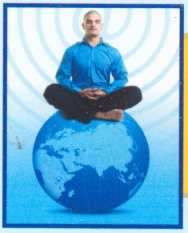

शांति पाने का सरल रास्ता

विश्व के महान चिन्तक पूज्य श्री चन्द्रप्रभ ऐसे सम्बुद्ध सद्गुरु हैं, जिन्होंने जीवन की हर गहराई को न केवल व्यावहारिक दृष्टि से समझा है, अपितु ध्यान और योग के द्वारा उसकी सूक्ष्मताओं का अन्तर्ज्ञान भी प्राप्त किया है। वे जहाँ साधना की प्रतिमूर्ति हैं, वहीं शांति के देवदूत और सद्ज्ञान के प्रवक्ता हैं। इनके प्रवचन और सैकड़ों पुस्तकें हर इंसान के तन-मन को सही सकारात्मक दिशा प्रदान कर रही हैं।

पूज्य श्री चन्द्रप्रभ की जीवन-दृष्टि से प्रसारित यह एक ऐसी अनमोल पुस्तक है, जो मानव-मन को उसकी सच्ची शांति, सौन्दर्य और आनन्द से रूबरू करवाती है। श्री चन्द्रप्रभ की यह पवित्र प्रेरणा है कि जीवन वीणा के तारों की तरह है जिन्हें इतना भी न कसा जाए कि जीवन की मिठास खत्म हो जाए और इतना ढीला भी न छोड़ा जाए कि जीवन बेसुरा हो उठे। जीवन को वीणा के तारों की तरह साधा जाए ताकि हमारा जीवन शांतिमय, संगीतमय और आनन्दमय हो सके। हमें हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और व्यसन को जीवन का पाप समझते हुए इन पांचों से बचने की पूरी मानसिक दृढ़ता रखनी चाहिए और प्रेम, शांति, सेवा, करुणा और आनन्द को जीवन का पुण्य समझते हुए इन पांचों को अपने जीवन के रग-रग में आत्मसात कर लेना चाहिए। इस निष्पाप और पुण्य-पथ का अनुसरण करने वाला ही वास्तव में शांति-पथ का अनुयायी होता है।

पुस्तक की प्रेरणा है : जीवन को सहजता से जिएँ, सकारात्मकता के फूल खिलाएँ, हर कार्य को सचेतनता से करें और सबके बीच रहते हुए भी अपने आपको कमल की तरह निर्लिप्त रखें।

अन्तर्मन की शांति, मुक्ति और आनन्द के लिए पढ़िए इस सुनहरी पुस्तक को।

Rs. 25/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org